तृतीय अध्याय

बंदिश का अर्थ एवं विभिन्न गायन शैलियों में बंदिशों का संरचनात्मक अध्ययन

3.1 बंदिश का अर्थ

बंदिश का साधारण अर्थ स्वर ताल एवं पद में सुबद्ध एवं सुनियोजित रचना। संगीत रत्नाकर में शारंगदेव ने इसे प्रबंध कहा है। उन्होंने इसके बारे में कहा है "प्रबंध्यते इति प्रबंध।'इस दृष्टिकोण से किसी भी बंधी हुई रचना को प्रबंध की संज्ञा दी जा सकती है। भारतीय संगीत में जितनी भी शैलियाँ है उसमें बंदिश रचना एवं प्रमुख तत्व है। संगीत का मुख्य उद्देश्य भावों की अभिव्यक्ति है एवं कोई भी सौंदर्य विधान रूप या आकार के बिना परिलक्षित नहीं हो सकता। सम्भवतः इसी कारण परम्परागत बंदिशों को भारतीय संगीत का आधार तत्व कहा जाता है। बंदिशों के द्वारा योजनाबद्ध ढंग से संगीत के विविध रूप में परिवर्तित किया जा सकता है।

हिन्दुस्तानी संगीत में बंदिशों का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। चाहे वह उतर भारतीय संगीत में बंदिश हो या दक्षिण भारतीय संगीत में पल्लवी। भारतीय संगीत में बंदिश के विभिन्न पर्यायवाची रूप-गीत, रचना, निबद्ध, प्रबन्ध, वस्तु, रूपक, चीज, गत इत्यादि प्राप्त होते हैं।

भारतीय संगीत कोश के अनुसार- बंदिश शब्द का अर्थ बंधी हुई श्रृंखला संहति रचना है। किसी भी गीत या स्वर-रचना को बंदिश कहा जाता है परन्तु प्रचलित व्यवहार में श्रेष्ठ रचना को ही बंदिश कहा जाता है। वर्तमान समय में किसी गुणीजन द्वारा उत्कृष्ठ, रचना की सृष्टि की जाने पर उसे बंदिश कहा जाता है। साधारणतः कहा जाता है कि जो गीत या स्वर रचना एवं छंद के समान रूप से मनोमुग्धकारी है उसे ही बंदिश रचना कहा जाता है। राजपाल हिंदी शब्दकोष के अनुसार बंदिश रूकावट, बंधन, शब्द योजना, रचना, साजिश, षडयंत्र उपाय (जैसे- काम की बंदिश करना)।[1]

3.2 विभिन्न विद्वानों द्वारा बंदिश की परिभाषा

डॉ. विजय चादोरकर के अनुसार "प्राचीन काल से भारतीय संगीत में राग' तथा ताल में बंधी पद रचना को सामान्य रूप से गीत भी कहा जाता है। इसे हम बंदिश तथा वाद्य-संगीत के संदर्भ में राग कहते हैं।[2]

पंडित रामाश्रय झा रामरंग के अनुसार ''जिस भाँति प्रकृति पुरूष ने जड़ या चैतन्य की रचना करके इस सृष्टि को सजाया है उसी प्रकार संगीत रूपी संसार को सजाने के लिए संगीत विद्वानों ने विविध रचनाओं का आविष्कार किया।[3]

श्री शान्ताराम कशालकार के अनुसार "बंदिश एक जरिया मात्र नहीं है उसका अपना एक चरित्र है, व्यक्तित्व है जो अत्यंत महत्वपूर्ण है।[4]

प्रो. भगवत शरण शर्मा के अनुसार प्रबन्ध का शाब्दिक अर्थ है प्र+बंध या प्रकृष्ट रूपेण बन्धः अर्थात् वह गेय रचना जिसमें धातुओं और अंगों को भलीभांति और सुन्दर रूप में बांधा गया है।[5]

पं. लक्ष्मण कृष्णराव पंडित के अनुसार "बंदिश राग का परिधान है अगर राग को बिना परिधान के प्रस्तुत किया जाएगा तो वह महत्वहीन हो जाएगा।[6]

डॉ. प्रभा अत्रे के अनुसार- बंदिश शब्द हमें किसी बंधी हुई सीमा में निबद्ध रचना के बारे में सूचित करता है। संगीत क्षेत्र में बंदिश का अर्थ राग व ताल में बद्ध शब्दों की रचना बंदिश शब्द का प्रयोग शास्त्रीय व उपशास्त्रीय कंठ संगीत में जहाँ रांग संकल्पना आधारभुत है वहां होता है। वाद्य संगीत में राग ताल में बद्ध रचना को गत कहते हैं। जहां राग की संकल्पना नहीं होती वहां बंदिश के स्थान पर रचना शब्द का प्रयोग किया जाता है। बंदिश आइना होता है उसमें से राग स्वयं का ही चेहरा श्रोताओं के सामने दिखाता है। यद्यपि सामान्य श्रोता शब्दों के अर्थ द्वारा राग का अनुभव करता है तो जो असर होता है वह स्वरों का हीं होता है। बंदिश के माध्यम से राग के तरफ जाने के लिए नए रास्ते मिलते हैं एवं राग के विराट स्वरूप का दर्शन होता है। एक राग में एक से ज्यादा बंदिशें अगर विविध धुनों में बंधी होती है तो वह राग स्वरूप समझने में मदद हो सकती है यह निश्चित है लेकिन राग स्वरूप की उतनी ही गहराई समझने में प्रतिभाशाली कलाकार को ही बंदिश भी काफी हो सकती है। बंदिश राग संगीत की एक झलक है सामग्री है।"[7]

श्री कृष्ण बुवा बुझे के अनुसार- 'हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति चीजों पर ही आधारित है इन्हीं चीजों पर ही हमारे शास्त्र मौजूद है।"[8]

श्री हफीज अहमद के अनुसार- "बंदिश राग की आउटलाइन होती है जिससे राग का खाका और आपका कदम कभी गड़बड़ नहीं हो सकता।"[9]

डॉ. देवव्रत चौधरी के अनुसार- बंदिश में एक बंधन का अर्थ समाया हुआ है जैसे सामाजिक और सांसारिक बंधन है। यह लय-ताल के दायरे और राग नियमों में बंधी रहती है।"[10]

3.3 राग को स्वरूप प्रदान करने में बंदिशों की भूमिका

भारतीय संगीत राग पर आधारित है। बंदिश स्वर ताल और पद में बंधी हुई गीत रचना होती है जो किसी विशेष राग पर आधारित होता है। बंदिश की तरह ही वाद्य संगीत में 'गत' है जो स्वर ताल और बोलों में बंधी रहती है। राग की अमूर्ततः को मूर्त रूप प्रदान करने की अद्वितीय क्षमता बन्दिशों में ही होती हैं।[11] राग और बंदिशों के बीच के संबंध को बताते हुए श्री भास्कर चंदावरकर ने कहा है- "In Indian music 'Bandish' is at once the essence, the distilled spirit of the raga and foundation on which the huge structure of the Raga can be ereced. It is like an education that gives immediate and direct access to the beauty of a Rage."[12]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दुस्तानी संगीत पारम्परिक बंदिशों की सहायता से ही पल्लवित और पुष्पित हुई है। संगीत विद्वानों का मानना है कि सांगीतिक बंदिश अपने प्रारंभिक रूपों ऋग्वेद, सामवेद से विकसित होते हुए प्रबन्ध वस्तु रूपक के रूप में सामने आई जो अभी वर्तमान समय में ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा आदि रूपों में अभी प्रचलन में है।

पंडित लक्ष्मणकृष्णराव ने रागों के स्वरूप में बंदिश के बारे में अपना मत दिया है और कहा है कि "बंदिश राग का परिधान है। अगर बिना परिधान के राग को प्रस्तुत किया जाएगा तो वह महत्वहीन हो जाएगा। अतः राग का प्रदर्शन असंभव हो जाएगा। और जहाँ तक बन्दिश की महत्ता का प्रश्न है बन्दिशों में राग छिपे होते हैं। एक राग में जितनी बन्दिशें सीखी जाएगी उतने ही प्रकार के राग को प्रस्तुत करने का तरीका मालूम होगा और उसका मुख्य घटक स्थल तथा अवयवों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी।"[13]

राग को विकास की दिशा में अग्रसर करते हुए राग को विस्तारित करना उन्हें गोयात्मकता रूप प्रदान करना एवं रंजक बनाना ही 'बंदिश' का महत्वपूर्ण कार्य है। बंदिश राग की एक विशिष्ट आकृति है। एक राग की कई शक्लें या रूप दिखाने के लिए यह एक अच्छा तरीका है। तदुपरांत हर बंदिश का एक मिजाज रहता है जो साहित्य के नव रसों या संचारी, व्याभिचारी भावों की परिभाषा से समझाया नहीं जा सकता। इस मिजाज को समझकरर जब बंदिश पेश की जाती है तब इसकी आकृति का सौन्दर्य खिल उठता है।"[14]

बन्दिश के माध्यम से राग की आकृति का श्रृंगार होता है और उसकी विशिष्ट स्वर-संगतियों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति भी होती है। राग में प्रयुक्त स्वर का ताना बाना बन्दिश के चारों ओर बुना जाता है, तत्पश्चात् बंदिश को केन्द्र में रखकर आलाप-तानों की संयोजना की जाती है। बन्दिश स्वर, ताल, पद और लय में आबद्ध होने के कारण कलात्मकता की प्रवृति को दर्शाती है। इसी कारण कलाकार सुमधुर आलाप-

तालों व लय के चमत्कारों को दिखाते समय भी बन्दिश की पंक्तियों को बीच-बीच में दिखाते रहते हैं। जिससे राग का व्यक्तित्व व चलन स्पष्ट हो सके।

प्रारंभ से ही घरानेदार गुरूओं ने ख्याल गायक सिखाते समय बंदिशों को गायन पर अपेक्षाकृत अधिक बल दिया है। उनका मानना था कि "गायन चाहे किसी भी शैली का हो, आवाज तैयार कर लेने के बाद एक ही राग में विभिन्न प्रकार के गीत जब तक नहीं सिखाये जाते राग के अंग-प्रत्यंग समझकर गाना कठिन हो जाता है। ये गीत रागों के उतम नमूने हैं जो राग गायन को समृद्ध करते हैं। गीतों का भण्डार कंठस्थ करना गायक की श्रेष्ठता का लक्षण माना जाता है।

बंदिश के द्वारा राग के अन्तःस्वरूप को एक रूप मिलता है, यानि उसकी आकृति स्पष्ट रूप से सामने आती है। अनेक बंदिशों द्वारा राग के विविध प्रकार से चलन की जानकारी भी होती है। कई पारम्परिक बंदिश रागदारी संगीत की भत्यता तथा माधुर्य से ओत-प्रोत हैं।[15]

इस तरह हम देखते हैं कि बंदिश राग के पारंपरिक स्वरूप को स्थायित्व प्रदान करती है, वरन् कुछ बन्दिशों में तो राग का स्वरूप अपने शुद्धतम रूप में व्यक्त होता है। अतः बन्दिश का परम लक्ष्य राग को सुव्यवस्थित, आकर्षक व रंजक स्वरूप को साकार रूप में प्रस्तुत करना है। राग बंदिश के द्वारा ही श्रोताओं केा अपने आकर्षण से सम्मोहित करता है। साथ ही बन्दिश कलाकार को उसके कला-कौशल को प्रदर्शित करने हेतु स्वरूप आधार भी प्रदान करती है।

3.4 बंदिशों की भाषा

संगीत में स्वर, ताल, राग, लय और बंदिश ये पांच महत्वपूर्ण घटक हैं। इसमें संगीत की अर्मूता को बंदिश के माध्यम से मूर्त किया जाता है। मानव के व्यवहार में प्रयुक्त भाषा और संगीत की भाषा में थोड़ा अंतर पाया जाता है। 'राग'में भी मनुष्य की भाषा के समान अल्पविराम, अर्धविराम, पूर्णविराम आदि विभाजन देखने को मिलता है। जिस प्रकार हम भाषा के माध्यम से कुछ कहना चाहते है उसी प्रकार राग के भी अपनी भाषा के माध्यम से अपने स्वरूप को व्यक्त करता है। वादी, स्वरूप, सम्वादी, न्यास, अल्पख, बहुत्व आदि के लगाव से राग स्पष्ट होता है।

जिस तरह मानवी भाषा में वाक्य पूर्ण विराम पर पूरा होता है संगीत में वही कार्य 'सम' नामक घटक करता है। संगीत में 'सम' ही वह स्थान है जहां पहले के कहन को समाप्त कर नये कहन का आरंभ किया जाता है।

संगीत की भाषा व्यवहारिक भाषा की अपेक्षा दूसरा रूप धारण करके सामने आता है। मानवीय भाषा मानव के मन के भावों एवं विचारों को शब्द के माध्यम से व्यक्त करता है जबकि संगीत की अभिव्यक्ति स्वरों के माध्यम से होती है। संगीत के भावों को साकार करने में काकु का भी महत्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न स्वरों के काकु से उच्चारित करने से विभिन्न भावों एवं रसों का बोध होता है।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से भाषा का स्वरूप का स्थूल रूप से निरपेक्ष करने के बाद उसके आधार पर हम संगीत की भाषा को एक अलग दृष्टिकोण से परख सकते हैं-

1. विशुद्ध संगीत के स्तर पर जिसमें गायन और वादन दोनों का अंतर्भाव है।
2. केवल कंठ संगीत के स्तर पर जिसमें मानवी भाषा के ध्वनियुक्त घटकों और संगीत के संबंध का परीक्षण होगा।

संगीत की भाषा का स्वरूप मनुष्य के भाषा की अपेक्षा अधिक तरल अनामिक और अर्मूत है। इस स्थिति के बावजूद मनुष्य के भाषा की जो विशेषताएँ भाषा विज्ञान ने स्पष्ट की है वे संगीत की भाषा पर भी चरितार्थ होती है। क्योंकि मनुष्य के भाषा के समान ही संगीत की भाषा ध्वनिरूप है।

संगीत की भाषा में स्वर काकु का बड़ा महत्व है। संगीत में काकु का अर्थ है किसी विशिष्ट भावाभिव्यक्ति के लिए स्वरों को दिया जानेवाला नाजुक धक्का या आंदोलना जैसे- राग हमीर में धैवत को आंदोलित किया जाता है। ये काकु गायक की सरगम प्रक्रिया को रंजक बनाते है। काकु अगर देखा जाए तो नित्य अनुभव से प्राप्त होता है जैसे- ''आज शनिवार है' जैसा साधारण वाक्य भी सूचना, प्रश्न, आश्चर्य, चेतावनी

आदि विभिन्न भाव संन्दर्भों के अनुसार अलग-अलग वजन के साथ यानि काकु भेद के साथ उच्चारित किया जाता है।

भाषा विज्ञान में काकु के लिए अलग परिभाषिक शब्द का प्रयोग होता है किंतु संगीत की भाषा और मानव व्यवहार की भाषा में बहुत हद तक साम्य है। जिस प्रकार भाषा की अभिव्यक्ति केवल ध्वनियों, शब्दों और वाक्यों के निर्जीव उच्चारण से नहीं हो सकती उसी प्रकार संगीत को अभिव्यक्त करने के लिए स्वर, वाक्य, बंदिश के शब्द इत्यादि को भाव रहित तरीके से कहने पर यथायोग्य रीति से नहीं होती।

संगीत की प्रस्तृति में प्रत्येक स्वर लययुक्त ही रहता है। यह लययुक्तता, स्वरों, स्वर वाक्यों और आलापों को परिचायात्मक परिमाप प्रदान करता है। लय का प्रयोग तो भाषा और संगीत दोनों में होता है। संगीत में लय तालचक्र में निबद्ध रहती है तो भाषा की लय अर्थानुसार होती है।

सच्चा कलाकार बंदिश की भाषा और उसकी काव्य सौंदर्य दोनों के निर्वाह पर अपना ध्यान केंद्रित रखता है। जिस गायन में केवल लयकारों का चमत्कार दिखाने के लिए शब्दों की खींचतान चलती है वह गायन विद्वतापचुर तो हो सकती है परन्तु भावोत्पादक नहीं बन पाती।

भाषा की शुद्धता भी बंदिश के व्यक्तित्व का प्रमुख अंग है। शब्दाश्रित बंदिश का जो स्वर रचना होती है उसमं शब्दों के अक्षर समूह के वजन का ख्याल भी कम नहीं रहता। इसलिए सावनी राग के (देओ देओ सतसंग का देव-देव सतसंग करेंगे) तो अर्थ ही बिगड़ जाएगा। अब अगर राग हमीर में "सुरझा रही" के ख्याल को सूर जा रही कर दिया जाए तो अर्थ का अनर्थ ही हो जाएगा। नायिक अपने बालों के लट को सुलझा रही है किंतु वह सुलझ नहीं पा रही ऐसा जो भाव है वह सूर जा रही को अर्थहीन वाक्य में भर ही जाता है।

3.5 बंदिश रचना हेतु आवश्यक नियम

चौंसठ कलाओं में संगीत कला सबसे श्रेष्ठ कला मानी जाती है। जो कि गुरू शिष्य परम्परा द्वारा सतत विकसित होते हुए वर्तमान समय तक एक शुद्ध पवित्र सरिता की भांति प्रवाहित होते चली आ रही है। संगीत की पारम्परिक कला हमें गेय पदों के रूप में हस्तानान्तरित हुई है जो गेय पद श्रोत, भक्ति, प्रबंधा, वस्तु, रूपक, ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा आदि अनेक बंदिशीय रूपों के द्वारा हिन्दुस्तानी रंगदारी संगीत में प्रचलित है यह गेय पद 'बंदिश' संगीत का आधार स्तम्भ है। राग की अमूर्तता को मूर्त रूप प्रदान करने की विशेष क्षमता इन बंदिशों में होती है।

पंडित भातखण्डे जी के अनुसार बंदिश रचना के समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना जरूरी है-

1. राग के विशेष अंगों को कहाँ और किस तरह के शब्दों से जोड़ा जाए।
2. राग का स्थूल स्वरूप
3. मुक्त स्वर का प्रयोग किस तरह हो।
4. अमुक स्वर से गीत प्रारंभ होने पर एक कल्पना पूरी होने के लिए कितने स्वर वाक्य आवश्यक होंगे।
5. कौन सी स्वर संगति प्रयुक्त की जाए।
6. कौन से वाक्य में कौन से स्वर आने चाहिए।
7. कौन सा विश्रांति स्थान है।
8. राग, ताल एवं भाव के निर्वहन हेतु चयनित शब्दों का विस्तार
9. बंदिश के शब्दों का उसके वाक्य से कौन संबंध है?
10. बंदिश के किस भाग का प्रयोग ताल के किस भाग के साथ हो या ताल के किस ठेके पर कौन सा भाग लिया जाए इत्यादि।

पंडित शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर में बंदिश के निम्न दस गुण बताएँ हैः-

व्यक्तं पूर्ण प्रसन्न च सुकुमारमलंकृतम्।
समं सुरक्तश्रलक्षणं च विकृष्टं मधुरं।।[16]

1. व्यक्त, स्वर, घंद, पद, राग आदि और प्रकृति प्रत्यय के स्पष्ट उच्चारणयुक्त।
2. पूर्ण गमक से युक्त
3. प्रसन्नं- प्रकट अर्थ और शीघ्र बोधक

4. सुकुमार कंठ से उत्पन्न स्वर युक्त।

5. अंकृतम– मंद, मध्य और तार इन तीनों स्थानों में अलंकृतम्।

6. सम- वर्ण, लय और स्थान के समत्व से युक्त।

7. सुरक्त- वीणा, वंशी और कंठ ध्वनि की एकता या सामंजस्य से युक्त

8. श्लक्षणं- नीच और उच्च द्रुत और मध्यादि में समान भाव से सुरक्षित।

9. विकृष्ट- भरतादि द्वारा उच्च उच्चरण को विकृष्ट कहा जाता हैं

10. मधुरं- विशेषाभाव से लावण्यपूर्ण और चिताकर्षक ध्वनि से युक्त।

संगीत के विभिन्न विद्वानों ने बंदिश को और प्रभावशाली बनाने के कुछ सामान्य सिद्धांत दिए हैं जो निम्नलिखित हैः

1. बंदिश की स्वर रचना इस प्रकार होनी चाहिए कि उसका पद या साहित्य उसमें समाहित हो।

2. स्वर ताल एवं पद का औचित्यपूर्ण प्रयोग होना चाहिए।

3. आचार्य भरत के वर्ण, अलंकार, छंद इत्यादि से समन्वित होने का निर्देश देते हुए गीति को अलंकार से सम्पन्न होना आवश्यक बताया है-

'शशिना रहितेव निशा विजलैव नदी लता विपुष्पेव

अविभूषितेव च स्त्री गीतिरलंकार हीना स्यात' [20]

अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा बिना रजनी, जल बिना नदी, पुष्प बिना लता, आभूषणहीनता स्त्री शोभा नहीं देते उसी प्रकार अलंकार के बिना गीति भी शोभायमान नहीं होती।

4. बंदिशों की रचना ऐसी हो जो राग के स्वरूप को तुरंत साकार कर दे।

5. राग के समस्त लक्षणों एवं शास्त्रीय नियमों का बंदिश में समुचित निर्वाह होना चाहिए। राग के चलन का उचित प्रयोग, वादी स्वर की प्रधानता, राग की अल्पत्व-बहुत्व के स्वरों का यथानुसार प्रयोग।

6. बदिश के स्वरों का भावात्मक पक्ष व स्वर सौंदर्य के तत्वों का प्रयोग भी राग की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए।

7. धुपद, ख्याल, ठुमरी, दादरा इत्यादि बंदिशों के विशिष्ट प्रकारों हेतु उनकी प्रकृति एवं लय के अनुरूप शब्द रचना होनी चाहिए।

8. बंदिश का 'सम' ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जिससे शब्दकोष व लय में स्वाभाविकता बनी रहे।

9. बंदिश के शब्दों में सौंदर्यवृद्धि एवं सरलता, सरसता लाने के लिए शब्दों के शुद्ध रूप के स्थान पर सुबोध शब्दावली प्रयुक्त होनी चाहिए। जैसे- तुम्हारे के स्थान पर तुमरी, हमारे के स्थान पर हमरी, श्रावण के स्थान पर सावन, प्रातः काल के लिए भोर, रात्रि हेतु रैना इत्यादि शब्दों का प्रयोग बंदिश में रंजकता लाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युकत नियमों से बंदिश की रचना उसकेा लोकप्रिय बनाती है। उसमें रंजकता लाती है।

3.6 विभिन्न गायन शैलियों में बंदिशों का संरचनात्मक अध्ययन

शास्त्रीय गायन में शब्दों का चुनाव राग के रूप, रस, प्रकृति, समय आदि को ध्यान में रखकर करना उचित होता है। गायन में प्रयोग किए जाने वाले गीत जितने सरल, छन्दबद्ध, सार्थक होंगे श्रोताओं के ज्यादा निकट पहुंचेंगे। शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद, धमार, ख्याल, प्रसिद्ध विधा है जिसका आगे संरचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

3.6.1 ध्रुपद गायन शैली

भारत पर लगभग तेरहवी से अठारहवीं शताब्दी तक मुस्लिम शासकों का शासन रहा। इस काल में भारतीय संगीत को मुगल दरबारों में प्रश्रय मिला, परन्तु अरबी एवं फारसी संगीत के सम्पर्क में आने के कारण उसके राग एवं गीत-शैलियों के स्वरूप में अनेक परिवर्तन आए। परिणामस्वरूप देशी संगीत में प्राचीन प्रबन्धों के स्थान पर नवीन गीत प्रकार जैसे ध्रुपद, धमार, ख्याल आदि प्रचलित हुए। इनमें प्राचीन प्रबन्धों कुछ लक्षण तो विद्यमान हैं परन्तु उनके स्वरूपों में कुछ परिवर्तन हुआ।[16]

इस तरह ध्रुवपद के रूप में प्रबन्धों का अपेक्षाकृत सरल व परिवर्तित रूप प्रचलित हुआ। ध्रुपद का मुल स्वरूप 'धुवपद' है।[17]

संगीत विद्वान विमल कांत राय चौधरी के अनुसार "धुव का अर्थ है अचल ओर चिरस्थाई, इस अर्थ में एकमात्र ईश्वर ही ध्रुव है और उसके गुण सूचक पद को ध्रुवपद कहा जाता है।[18]

प्रो. देवव्रत चौधरी ने ध्रुवपद शब्द की व्याख्या करते हुए बताते है कि ध्रुवपद शब्द 'ध्रुरव और पद के संदर संयोग का परिणाम है। ध्रुव शब्द से स्थयित्व, अटलता का बोध होता है वही पद से तात्पर्य सार्थक शब्द रचना से है।

पण्डित भातखंडे ने ध्रुवपद की व्याख्या करते हुए लिखा है- "ध्रुवपद के चार भाग स्थायी, अन्तरा, संचारी और अभोग होते हैं। वीर, श्रृंगार और शांत रस की प्रधानता ध्रुवपदों में होती है और भाषा उच्च श्रेणी की होती है। इनका गान चौताल, सूलताल, क्षम्पा, तेवरा, ब्रह्म और रूद्र इत्यादि तालों में होता है।[19]

इस तरह स्वर ताल और पद इन तीनों का उत्कृष्ठ सामंजस्य ध्रुवपद शैली में पाया जाता है। ध्रुवपद में निबद्ध एवं अनिबद्ध दोनों अवधारणाओं का उचित प्रश्रय मिला है। ध्रुवपद की बन्दिश इसके निबद्ध स्वरूप को तथा अलाप अनिबद्ध स्वरूप को अभिव्यक्त करता है।

ध्रुवपद गायन शैली का सबसे ज्यादा विकास राजा मान सिंह तोमर के काल में हुई। भारतीय संगीत के इतिहास में राजा मान सिंह तोमर महान संगीतज्ञ भी थे, उनको ध्रुवपद गायन शैली के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है।

फकीरूल्लाह के रागदर्पण जिसमें राजा मानसिंह तोमर के ग्रंथ 'मानकुतूहल' का अनुवाद है इससे उल्लेखित किया गया है कि इस कालावधि में भले ही प्राचीन प्रबन्धों का गायन प्रचलन में रहा किन्तु इस समय तक भारतीय संगीत में ध्रुवपद गान विधा अधिक लोकप्रिय हो गई थी। इस तरह फकीरूल्लाह तथा अबुलफजल के अनुसार इसके अविष्कारक तथा प्रचलन का श्रेय गवालियर के राजामान सिंह तोमर को है।

संगीत के विभिन्न विद्वानों ने ध्रुवपद में काव्यरचना का ध्रुवपद के प्रथम क्रमांक पर माना है। प्रारंभिक काल में इसे उदग्राह संज्ञा दी जाती रही है। उद्ग्राह संज्ञा देने पर गीत रचना की दृष्टि से वह ध्रुवखंड है। बाद में इसलिए स्थायी संज्ञा का प्रयोग किया जाने लगा। स्थायी तथा ध्रुव खंड दोनों का अर्थ लगभग समान हीं है। खंड के बाद उसकी आवृति होती है। हालांकि इस अशय को स्पष्ट करते हुए ठाकुर जयदेव सिंह ने अपने लेख प्रबन्ध और ध्रुवपद में बताया है ध्रुवपद में उद्ग्राह और धुपद को बताया है "ध्रुवपद में उद्ग्रह और ध्रुवपद को मिलाकर एक-एक कर दिया और स्थायी नाम दिया गया। स्थायी उद्ग्राह के समान ही सांगीतिक रचना का प्रथम भाग है। यह ध्रुव खंड के समान कुछ शब्दों का पुनः पुनः उच्चारण करती है। स्थायी में राग का प्रारंभिक परिचय रहता है। स्थायी में 'उद्ग्राह'और 'ध्रुव'का एकीकरण कर देने के कारण 'मेलापक'जो कि उदग्राह और ध्रुव को आपस में मिलाती थी, वह अब निरर्थक होने के कारण त्याग दी गई और इसका अंतर 'अंतरा'ने ले लिया। यह स्थायी और संचारी या आभोग के मध्य में आती है। यह सांगीतिक बंदिश का दूसरा भाग हैं। ध्रुवपद के तीसरे भाग संचारी ही किसी से तुलना नहीं है प्रबन्ध के आभोग के समान ही आभोग सांगीतिक बंदिश का अंतिम भाग है।[20]

इस तरह विभिन्न विद्वानों के मतों को देखने से स्पष्ट होता है कि ध्रुवपद की धातुओं को अलग-अलग नामों से जाना जाता रहा है। सालगसूड प्रबन्धों में प्रयुक्त 'अन्तरा' नामक धातु के कारण इन धातुओं के नामों में अंतर देखने को मिलता है। वर्तमान में ख्याल के दूसरे खंड को हम अंतरा कहते है। इसका कारण यह है कि ख्याल के प्रचलन के समय जब ध्रुवपद रहा तथा उसकी धातुओं के लिए स्थायी अंतरा, संचारी, आभोग नाम का प्रयोग किया जाता था तब ध्रुवपद के दूसरे धातु का नाम अंतरा रहा।

प्रबन्ध के भागों की ही तरह इसके छः अंगों स्वर, विरूद, पट, तेनका पाट और ताल में से तीन अंग स्वर पद और ताल ध्रुवपद में सदैव विद्यमान रहते है। विरूद, तेनक और पाट को त्रिवट नामक गायन शैली जो कि ध्रुवपद से साम्यता रखती है में प्रयुक्त किया जाता है। संगीत के सुप्रसिद्ध प्रबंधकार पंडित भावभट्ट ने अपने ग्रंथ अनुप संगीत रत्नाकर में ध्रुवपद के लक्षण बताते हुए लिखा है–

'गीर्वाणमध्यदेशीय भाषासाहित्य रजितम्।
द्विचतुर्वाक्यसंपन्न नरनारीकथाश्रयम्।।
श्रृंगाररसाभाववाद्यं रागालापदात्मकम्।
पदान्तानुप्रसयुतं पादान्तयमकं च वा।।
प्रतिपादं यत्र बद्धमेवम् पद चतुष्टयम्।
उदग्राहध्रुवकाभोगोतम ध्रुवपद स्मृतम्।।' [21]

अर्थात् संस्कृत या मध्यदेशीय अर्थात् ब्रजभाषा भाषा के साहित्य द्वारा सुशोशित, दो चार वाक्यों से युक्त जिसकी कथा नर नारी की हो, मुख्यरूप से श्रृंगार रस के भावों से पूर्ण हो, रागालाप से युक्त पदों का समावेश दो पादों के अंत में अनुप्रास आथवा यमक को जिसमें चारो पद के अंत में अनुप्रास अथवा गमक हो जिसमें चारों पर इस प्रकार से बंध हो जिसमें उदग्राह, ध्रुवक, अन्तरा, आयोग पाए जाते हो ध्रुवपद कहे जाते हैं।

इस परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि ध्रुवपद के भागों को उद्ग्राह, ध्रुव, अन्तरा और आभोग कह रहे है जो कि प्रबंध के भागों के नाम थे इस प्रमाण को बल मिलता है कि ध्रुवपद का उद्गम प्रबन्ध से हुआ है।

अबुलफजल कृत आइने अकबरी के अनुसार ध्रुवपद गायन शैली को मुगल शासकों द्वारा समुचित संरक्षण प्राप्त हुआ। अकबर के समय में ध्रुवपद का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। अकबर के दरबार में ग्वालियर घराने के तानसेन, सुबहान खां, बाबा रामदास, सरोद खां, तानतरंग खां, चांद खां आदि नामी कलाकार थे।

अकबर के समय में ध्रुवपद गीतों को गाने के चार ढंग थे। यहीं चार ढंग चार बानियों के नाम से जाने जाते थे जो इस प्रकार थे- गोड़हार, खंडार, डागुर तथा नौहार।

गोबरहार बानी- इस बानी के अविष्कारक के बारे में संगीत विद्वानों में मतभेद है। वैसे अधिकतर विद्वान तानसेन को इस बानी का अविष्कारक मानते है।

आचार्य वृहस्पति ने गोबरहार वाणी का संबंध ग्वालियर से लगाया है। उनके अनुसार ग्वालियर में बोली जानेवाली भाषा 'गवालियरी'का अपभ्रंश गौरारी है यही वाणी गोबरहारी वाणी कहलाई। संगीत सम्राट तानसेन के ध्रुवपद में जिस शुद्धवाणी की चर्चा है वह यही गोबरहारी

वाणी है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार इस वाणी के प्रवर्तक कुम्भनदास के वंशज है। उनके मतानुसार तानसेन की शैली सोनियाँ बानी कही जाती है।

गोबरहारी वाणी का प्रधान लक्षण प्रसाद गुण का होना था तथा यह शान्त और रसोद्दीपक थी। गोबरहारी वाणी को राजा की उपाधि दी गई है।

खंडहार बानीः– खंडहार बानी के प्रवर्तक बादशाह अकबर के दरबार के प्रसिद्ध बीनकार नौबत खां को माना जाता था। ये 'खंडार' गांव के रहनेवाले थे इनके गायन शैली को खंडारी या खंडदार वाणी कहा जाने लगा। बाद में अल्लादियाँ खाँ, समरूद्दीन खाँ, वजीर खां तथा बनारस घराने के छोटे रामदासजी इस शैली के प्रसिद्ध कलाकार हुए।

इस वानी की प्रमुख लक्षण विचित्रता एवं तीव्र रसोद्दीपका है। इसकी गति अधिक विलंबित नहीं थी।

डागुर बानी स्वामी हरिदास जी को डागुर बानी का प्रवर्तक माना जाता है। मुहम्मद करम ने दिल्ली के निकट 'डागर'नाम के प्रदेश की चर्चा की है। यहाँ के निवासियों की भाषा डगरी थी चूंकि वृजचन्द इस प्रदेश के निवासी थे अतएव इस बानी का नाम डागुरबानी पड़ गया परन्तु सर्वाधिक लोगों का मत है कि इस बानी का अविष्कारक स्वामी हरिदास जी ही थे। स्वामी हरिदास के बाद अल्लावंदे खां, नसीरूद्दीनन खां, रहीमुमद्दीन खां इत्यादि ने इस गायकी परम्परा को आगे बढ़ाया।

नौहार बानीः- इस बानी का प्रवर्तक तानसेन के दामाद 'सुजान खां'को माना जाता है। बाद में खादिम हुसैन खां, मुहम्मद खां, उस्ताद विलायत हुसैन खां आदि इस बानी के प्रसिद्ध गायक हुए।

भातखंडे जी ध्रुवपद गायकों को कलावंत की संज्ञा दी है। इन कलावंतो उनकी भिन्न-भिन्न वाणी द्वारा खंडार, नौहार, डागुर एवं गोबरहार ऐसे वर्ग होते थे। प्राचीन काल में शुद्धा भिन्न बेसरा, गौडी, साधारणी इत्यादि जो गीतियाँ थीं उन्हीं से उपर्युक्त बानियाँ उत्पन्न हुई होगी। प्रत्येक घराने के गायक अपने पूर्वजों की वाणी से ही गाने का अभ्यास करते थे।

इस ध्रुवपद में गोबरहार को राजा अर्थात् सर्वश्रेष्ठ, खंडार को फौजदार डागुर को दीवान और नौहार को बख्शी कहकर इन चारों की हैसियत बतायी है। इस दृष्टि से गोरबहार सर्वश्रेष्ठ है।

3.6.1.1 ध्रुवपद की संरचना

संरचना शब्द का अर्थ बनावट होता है। ध्रुवपद की संरचना अर्थात् ध्रुवपद के बंदिश की राग परिचय उसमें प्रयुक्त अर्थात् ध्रुवपद के बंदिश की राग परिचय उसमें प्रयुक्त होने वाले पद या शब्द किस स्वर और किस प्रमाण में प्रयोग किए जाएँ, साथ हीं अल्पख और बहुत्व का समुचित प्रयोग। ध्रुवपद गायन शैली के अनुसार ही इसमें शब्दों व तालों के चयन करना जरूरी होता है। इस शैली में विशेष रूप से उच्चकोटि व ओजपूर्ण शब्दों का प्रयोग ध्रुवपद की संरचना में आवश्यक होता है। इसमें शब्दों का रख-रखाव इस तरह रखा जाता है कि जिसमें शब्दों को उच्चारण और भाव में स्पष्टता बनी रहे। इस शैली में खटका, मुर्की का प्रयोग न के बराबर होता है। ध्रुवपद गायन शैली में शब्द ओर स्वर दोनों ही खड़े-खड़े लगते है व साथ ही मींड और गमक का काम अधिक देखने को मिलता है।

तत्पश्चात रचना को निबद्ध करने के लिए ताल के लयात्मक विन्यास को दृष्टिगत कर इसकी संरचना की जाती है। इस शैली को निबद्ध करने के लिए खुले हुए बोल के ताल का प्रयोग किया जाता है। तालों के उदाहरण इस प्रकार हैं-

चारताल

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	तिट	कट	गदि	गन
X		0		2		3		4			

सूलताल

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
धा	धा	दिं	तां	कट	धा	तिट	कत	गदि	गन
x		0		2		3		0	

तीव्रा

1	2	3	4	5	6	7
धा	दिं	ता	तिट	कत	गदि	गन
x			2		3	

उपर्युक्त तालों के अलावे वसंत ताल, लक्ष्मी ताल, बद्धताल इत्यादि में ध्रुवपद की संरचना की जाती है।

राग-काफी ध्रुवपद

आरोह- सा रे ग म प ध नि सां

अवरोह- सां नि ध प म ग ग रे सा

पकड- सा सा, रे रे, ग ग, म म, प

बंदिश

ताल - चौताल (12 मात्रा)

स्थायी

आये री मेरे धाम श्याम
कुंवर कृष्ण उनके चरण
नैनन सौं पर सो

अंतरा

वंशी वट तरवर
वंशी लिए साज नटवर
साजि री औड़ पियरो पट
धाय आई री मेरे[22]

स्थायी

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
सा	रे	रे	ग	ग	रे	प	-	ध	ग	-	रे
आ	ऽ	ये	ही	मे	रे	धा	ऽ	म	श्या	ऽ	म
म	ग	रे	रे	नि	सा	रे	ग	प	ध	नि	सां
कुं	व	र	कृ	ऽ	ष्ण	उ	न	के	च	र	ण
नि	ध	म	प	ग	रे	प	ग	रे	रे	नि	सा
नै	ऽ	न	न	साँ	ऽ	प	र	ऽ	सो	ऽ	ऽ

अंतरा

म	-	प	ध	नि	सां	सां	सां	रें	नि	सां	रे
व	ऽ	शी	ऽ	व	ट	त	र	क	र	व	ऽ
रें	मं	रें	सां	सां	सां	सां	रें	नि	सां	सां	-
शी	ऽ	लि	ए	सा	ऽ	ज	न	ट	व	ऽ	र
नि	ध	नि	सां	सां	सां	सां	सां	रें	नि	सां	-
स	ऽ	जि	ऽ	री	ऽ	औ	ऽ	रो	पि	य	रो
नि	ध	म	प	ग	रे	ग	रे	रे	रे	नि	सा
प	ट	धा	ऽ	य	ऽ	आ	ऽ	इ	री	म	रे
x		0		2		0		3		4	

स्थायी

दुगुन

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
						सारे	रेग	गरे	प-	धग	-रे
मग	रेरे	निसा	रेग	पध	निसां	निध	मप	गरे	पग	रेरे	ऩिसा
कुंव	रकृ	ष्ण	उन	केच	रण	नैऽऽ	नन	सौऽ	पर	ऽसो	ऽऽ
x		0		2		0		3		4	

इसी प्रकार तिगुन एक मात्रा में तीन तथा चौगुन एक मात्रा में चार स्वर लेकर गाये जाते हैं। अंतरे के दुगुन, तिगुन तथा चौगुन भी इसी प्रकार गाये जाते हैं।

राग-भीमपलासी

चौताल

स्थायी

सा		सा							म		
नि	सा	म	ग	रे	सा	नि	सा	सा	ग	म	म
ध	र	न	मु	र	न	ता	ऽ	न	ता	ऽ	ल
x		0		2		3		0			
प	-	प^{म}	ग^{म}	म	म	ग	म	म	प	नि$^{सां}$	नि$^{सां}$
के	ऽ	प्र	भा	ऽ	न	ओ	ऽ	क	जो	ऽ	क
प	नि	सां	नि	ध	प	प^{म}	मग	^{ग}म	ग	रे	सा
के	ऽ	बि	धा	ऽ	न	सा	ऽऽ	ध	गा	ऽ	वे
x		0		2		3		0			

अंतरा

-	प	-	[म]ग	म	म	प	नि[सां]	नि[सां]	सां	-	सां
ऽ	आ	ऽ	रो	ऽ	हि	अ	व	ऽ	रो	ऽ	हि
नि[सां]	सां	-	ग[सां]	रें	सां	नि[सां]	नि[सां]	सां	नि	ध	प
अ	ऽ	ऽ	स्ता	ऽ	इ	सं	ऽ	ऽ	चा	ऽ	रि
प	नि	-	सा	-	सा						
आ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	वे						

संचारी

सां	नि	नि	नि	-	नि	सां	-	नि	ध	प	-
मू	ऽ	छ	ना	ऽ	प्र	मा	ऽ	ऽ	न	सो	ऽ
प	प	प	ग	ग	म	प	नि	-	नि-	सां	सां
ग	म	क	में	ऽ	द	त्यु	त	ऽ	अ	च्यु	त
नि	ध	प	ग	म	म	प	ग	-	रे	-	सा
सा	ऽ	ऽ	ध	ऽ	र	न	के	ऽ	त्यो	ऽ	रे
नि	-	नि	सा	-	सा	नि	सा	मग	रे	-	सा
बे	ऽ	क्त	बे	ऽ	क्त	क	र	ऽऽ	गा	ऽ	य
x		0		2		0		3		4	

आभोग

प	-	प	-	ग	म	प	नि	-	सां	-	सां
चिं	ऽ	ता	ऽ	म	नि	गु	रू	ऽ	ध्या	ऽ	न
नि	नि	सां	गं	रें	सां	नि	नि	सां	नि	ध	प
आ	ऽ	न	मा	ऽ	न	श्रु	ति	प्र	भा	ऽ	न
प	नि	ध	प	ग	म	प	म	ग	रे	सा	-
उ	ल	ट	पु	ल	ट	सु	र	न	क	रे	ऽ
नि	नि	नि	सा	-	सा	नि	नि	सा	म	म	-
ने	ऽ	म	प्रे	ऽ	म	ह	द	ऽ	क	रे	ऽ
ग	म	प	नि	सां	सां	ग	रें	सां	नि	ध	प
त	ब	गु	नि	ज	न	म	धे	ऽ	जा	ऽ	य
प	⌊मग⌋	म	ग	रे	सा						
म	⌊ऽऽ⌋	न	पा	ऽ	वे						
x		0		2							

सम के स्थान पर जो शब्द आते है उसका जोड़दार उच्चारित किया जाता है।

राग-भूपाली

(सूलताल मध्यलय)

स्थायी

ग	-	ग	-	ग	रे	ग	प	ग	रे
सा	ऽ	धे	ऽ	सु	र	सा	ऽ	धे	ऽ
ग	प	ध	सां	प	ध	प	ग	रे	रे
सु	र	सु	र	लो	ऽ	क	दे	ऽ	त
x		0		2		3		0	

अंतरा

ग	-	प	ध	सां	ध	-	सां	-	सां
औ	ऽ	ऽ	व	य	हि	ऽ	रा	ऽ	ग
सा	ध	सां	रे	सां	रें	सां	ध	प	ग
सं	ऽ	गि	त	म	त	प्र	मा	ऽ	न
सा	रे	ग	प	ध	सां	ध	प	ग	रे
ग	प	धध	गग	पप	रेरे	गग	-रे	सा	रे[23]
सा	ऽ	ऽत	ऽट	पुल	ऽट	सुर	ऽन	सों	ऽ
x		0		2		3		0	

राग-हमीर
ताल-तीव्रा
स्थायी

प	-	ग	म	ध	-	ध	नि	ध	सां	सांनि	ध	नि	प
हे	ऽ	ज	ग	दी	ऽ	श	च	तु	र	मुऽ	रा	ऽ	र
प	प	प	प	ध	-	प	ग	-	म	रे	सा	रे	सा
भ	व	भ	य	हा	ऽ	र	दु	ऽ	ख	नि	क	ऽ	र
सां	सा	म	ग	प	-	प	प	प	ग	म	ध	-	ध
स	ब	को	अ	ध	ऽ	र	ना	ऽ	म	तु	म्हा	ऽ	र
सां	-	गं	-	मं	रें	सा	ध	-	रे	सांनि	ध	नि	प
की	ऽ	जे	ऽ	पा	ऽ	र	बे	ऽ	हो	हऽ	मा	ऽ	र
2		3		x			2		3		x		

अंतरा

प	प	प	-	सां	सां	सां	सां	सां	सां	रें	सा	-	सा
ह	म	तो	ऽ	श	र	न	च	र	न	तु	हा	ऽ	र
ध	ध	ध	ध	सां	-	सां	सां	रे	सां	रे	ध	नि	प
क	र	नि	र	ध	ऽ	र	हे	ऽ	क	र	ता	ऽ	र
प	प	प	प	ध	-	प	ग	ग	म	रे	सा	रे	सा
तु	म	होप	र	भ	ऽ	र	अ	प	नो	ऽ	डा	ऽ	र
सां	सा	म	-	प	-	प	प	प	ग	म	ध	-	ध
तु	म	हो	अ	पा	ऽ	र	प	ति	त	ऽ	द्वा	र	र
सां	सां	ग	-	मं	रें	सां	ध	-	रे	⌊सानि⌋	ध	नि	प
इ	त	नी	ऽ	बि	न	ती	ली	ऽ	जे	⌊बि ऽ⌋	चा	ऽ	र
2		3		x			2		3		x		

राग- पुरिया धनाश्री

ताल- चारताल

स्थायी

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
						ध	मं	ग	रे	सा	सा
						सु	मि	र	न	ह	रि
नि	रे	ग	रे	ग	म	प	प	प	ध	ध	प
की	ऽ	क	रो	ऽ	रे	जा	ऽ	सु	हो	ऽ	वे
ध	म	ग	म	रे	ग						
भ	व	ऽ	पा	ऽ	र						
x		0		2		0		3		4	

अंतरा

म	ग	-	म	-	ध	सां	-	सां	रे	-	सां
य	ह	ऽ	सी	ऽ	ख	जा	ऽ	न	मा	ऽ	न
सां	नि	रें	ग	रें	सां	सां	निध	रें	नि	ध	प
क	हो	ऽ	है	ऽ	पु	रा	ऽऽ	न	न	मो	ऽ
प	पम	ध	म	-	ग	म	ध	रे	नि	ध	प
भ	गऽ	ऽ	वा	ऽ	न	आ	ऽ	ऽ	प	हीं	ऽ
नि	म	ग	म	रे	ग[24]						
क	र	ऽ	ता	ऽ	र						

3.6.2 धमार गायन शैली

बन्दिश का यह प्रकार चौदह मात्रा युक्त धमार ताल विशेष में गाये जाने के कारण 'धमार' नाम से प्रचलन में आया। धमार गायन शैली ख्याल की तरह स्थायी एवं अंतरा दो चरणों में गाया जाता है परन्तु यह गायन शैली ध्रुवपद से साम्य रखता है। अतः यह गायन शैली ख्याल एवं ध्रुवपद के मध्य की स्थिति को अभिव्यक्त करता है।

धमार का सबसे पहला उल्लेख 'संगीत शिरोमणि' में 'धम्माली प्रबन्ध' के रूप में प्राप्त होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि 'धमाल' सूफी संतों द्वारा एक दूसरे का हाथ पकड़कर ईश्वर उपासना हेतु नृत्य सहित गाया जाता था।[25]

धमार का प्रचलन ब्रज के क्षेत्र में लोकगीतों के रूप में बहुत काल से चला आ रहा है। होली के अवसर पर नृत्य के साथ गाये जाने वाला जो गीत धमाल के कारण धम्माली कहलाता था। वह आगे चलकर धमार के रूप में प्रचलित हुआ। ब्रज भाषा में रचित इन गीतों में कृष्ण की रासलीला और होरी का वर्णन मुख्यतः देखने को मिलता है।

16वीं शताब्दी के प्रारंभ में मानसिंह तोमर और नायक बैजू ने इस गायकी की नींव डाली। ब्रज के हेारी को लेकर उसे रागों में निबद्ध करके धमार की नींव डाली गई।

धमार गायन शैली में होरी और रास के श्रृंगारिक पद के कारण ध्रुवपद जैसी गंभीरता नहीं रहती। इसमें मधुरता और तरलता अधिक होती है।

ध्रुवपद शैली के समान इसके गायन में क्रमशः नोमतोम का आलाप, पदों का गायन एवं लयकारी की उपज इत्यादि सम्पन्न होती है। इस गायकी में खटका मूर्की के स्थान पर गमक, मीड़ एवं कण का अधिक प्रयोग देखने को मिलता है। इसकी पद रचना अधिकांशतः फाग से संबंधित होती है और संयोग एवं वियोग व श्रृंगार रस की श्रृष्टि करती है। प्राचीन काल में धमार कृष्ण की लीला गुणगान करते है, जबकि मध्यकालीन धमारों में बादशाहों की प्रशंसा मिलती है।

मध्यकाल में गाये जाने वाले धमारों में शाहशांह को भी नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दरबारी गायक ऐसी रचनाएँ किए जिनमें शाहशांह को नायक के रूप में प्रस्तुत है। जहांगीर ने लिखा है तानसेन अपनी रचनाओं में अकबर का नाम डाल दिया करते थे। यमन राग में एक धमार में मालिनी नायिका और दूती का वर्णन है। दूती कहती है- अब तो होली खेले ही बनैगी रूठने से कुछ नहीं होगा। नवेली तू मेरा कहना मान ले तभी उस रंग में ओत-प्रोत होगी। मैं कई बार आई-गई परंतु तू ढोडी उंची करके भौंहे तानती ही रहोगी। शाह जलालुदीन (अकबर) आप फगुआ (फाग में दिया जानेवाला उपहार) दीजिए। अपने आप मान जाएगी। धमार के बोल है-

होरी खेलई बनैगी रूसै अब न बनैगी।
मेरो कहो तू मानि नबैल जब बा रंग में सनेगी।
कँई बेरि आई गई तू नाहीं मानत ऊँच करि ढोड़ी भौंहे तनैगी।
साहि जलालउद्दीन फगुआ दीजै, आपुतैं आप मानेंगी।[26]

मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी नेमत खां 'सदारंग'ने भी अनेक धमारों की रचना की तथा उन रचनाओं में मुहम्मदशाह को नायक के रूप में पेश किया है-

अब तौ मुहम्मदसाहि पिय घर आए।
चहल-पहल फागुन की देखों जित-तित सदारंग बरसाए
चैन सो गाओ आओ रहसि-रहसि कहि लाखनि-लाखनि पाए।
इक होरी दूजे न्हाए रंग सों यह सुख गिनेन जात गिनाए।

धमारों में छंद का बंधन अनिवार्य नहीं होता। कभी-कभी तान के अनुरोध से 'आ' ई, अ, ए ऐ ओ आदि का प्लुत उच्चारण होता है, ऐसी स्थिति के लिए छंद बाधक है।

3.6.2.1 धमार गायन शैली की संरचना

ब्रज, अवधि आदि भाषा में धमार गायन शैली की संरचना की जाती है। ब्रज के होली का वर्णन, राधा कृष्ण का वर्णन मुख्यतः इस शैली की खास विशेषता होती है। इस शैली की संरचना करते समय शब्द राग ताल का विशेष स्थान रखा जाता है।

इस शैली की रचना धमार ताल में की जाती है। धमार ताल का उदारण निम्न प्रकार है-

धमार ताल

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
क	धी	ट	धी	ट	धा	-	ग	दि	न	दि	न	ता	ऽ
x					2		0			3			

धमार

राग-छायानट

ताल- धमार

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
										नि	ध	प	प
										अ	ब	मो	से
रे	ग	-	ग	म	प	-	म	ग	-	म	रे	सा	-
खे	ऽ	ऽ	ल	न	ला	ऽ	गे	ऽ	ऽ	हो	ऽ	री	ऽ
सा	-	-	ग	-	म	रे	रे	सा	-	ध	धनि	प	-
श्या	ऽ	ऽ	म	ऽ	ऽ	सुं	द	र	ऽ	क	रऽ	त	ऽ
रे	ग	-	ब	म	प	सा	सा	रे	सा				
हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ब	र	जो	ऽ	री				
x					2		0			3			

अंतरा

प	प	-	सां	-	-	सां	सां	-	-	रें	-	सां	-
अ	बी	ऽ	र	ऽ	ऽ	उ	डा	ऽ	ऽ	ब	ऽ	त	ऽ
सां	-	ध	सां	-	रें	-	सां	-	-	ध	धनि	प	-
गा	ऽ	ऽ	री	ऽ	ऽ	ऽ	गा	ऽ	ऽ	ऽ	बऽ	त	ऽ
प	प	-	रें	-	सां	-	सां	सां	-	ध	नि	प	-
मु	ख	ऽ	न	ऽ	ल	ऽ	द	ई	ऽ	हे	ऽ	ऽ	ऽ
रे	ग	-	ग	म	प	-	सा	रे	सा[27]				

धमार (बंदिश)

ताल-धमार (14 मात्रा)

स्थायी

अनोखी होरी खेलन लागे

अन्तरा

निस हीं निस रंग भरत सांवर

कछु सोवर कछु नागे

संचारी

लाल गुलाल लिए कर ललन

नाद नंदन अनुराग

आभोग

कृष्ण जीवन लच्छिराम के प्रभु प्यारे

बने है मरगज बागे

स्वरलिपि (स्थायी)

														रे
														अ
11	**12**	**13**	**14**	**1**	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**	**10**	
ग	प	नि	-	सां	सां	सां	सां	ध	ध	निप	म	ग	रे	
नो	ऽ	खी	ऽ	हो	ऽ	री	खे	ऽ	ल	नऽ	ला	गे	ऽ	
3				x					2		0			

अन्तरा

ग	प	ध	नि	सां	सां	सां	सां	ध	ध	निप	म	ग	ग
नि	स	ही	ऽ	नि	स	रं	ग	ध	र	ऽत	सां	व	र
ग	प	निध	नि	सां	सां	सां	सांनि	सांध	नि	प	म	ग	रे
क	छु	सोऽ	ऽ	व	त	ऽ	कऽ	ऽऽ	ऽ	छु	जा	गे	ऽ
3				x					2		0		

संचारी

ग	रे	ग	प	म	ग	ग	ग	रे	ग	पप	म	ग	रेसा
ला	ऽ	ल	गु	ला	ऽ	ल	लि	ये	क	र	ल	ल	ऽन
ग	-	रे	ग	प	प	-	ध	धनि	प	म	म	ग	रे
न	ऽ	द	नं	द	न	ऽ	अ	नुऽ	ऽ	रा	ऽ	गे	ऽ
3				x					2		0		

आभोग

ग	प	ध	नि	सां	सां	सां	सां	धनि	प	प-	म	-	ग
कृ	ऽ	ष्	ण	जी	व	न	-	लच्छिरा	ऽ	मके	प्रभु	प्या	रे
ग	प	निध	नि	सां	गं	रें	सां	-	सांध	निप	म	ग	रे[28]
ब	ने	हैऽ	ऽ	म	र	ऽ	ग	ऽ	जाऽ	ऽऽ	ना	गे	ऽ
3				x					2		0		

3.6.3 ख्याल गायन शैली

वर्तमान समय में भारतीय संगीत की सबसे लोकप्रिय विधा ख्याल है। 'ख्याल' फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है विचार या कल्पना। जब कोई गायक अपनी सधी हुई कल्पना को स्वर, लय, तान के माध्यम से सांगीतिक आकार देता है तो उसे 'ख्याल' कहा जाता है। इस गायन शैली में ध्रुवपद की उपेक्षा कल्पना पर ज्यादा जोर दिया जाता है। इस तरह राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी कल्पना के अनुसार विविध आलाप तानों का विस्तार करते हुए रागा का स्वरूप स्थापित करते हुए गाना ही ख्याल है। ख्याल के बारे में डॉ. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर जी का मत है कि द्रुत ख्याल का उद्भव कव्वाली से हुआ तथा विलम्बित ख्यालों की रचनार ध्रुवपद के नियमों में शिथिलता देकर की गई। साथ ही रातंजनकर जी ने ख्याल का जन्म सदारंग-अदारंग के समय हीं माना है।

ख्याल के उद्गम के संदर्भ में ठाकुर जयदेव सिंह का मत है कि ख्याल का उद्गम साधारण गीति से हुआ है। यह भारत की शताब्दी में प्रचलित अनेक प्रकार की मधुर गमकों से युक्त साधारण गीति का स्वाभाविक विकास ही ख्याल शैली बना जिसमें अपने युग की अन्य गायन शैलियों की गमक, खटका, मुर्कि व कम्पन आदि का मिश्रण था।[29] श्री कृष्णराव शंकर पंडित भी लगभग इसी मत से सहमत है कि इन्होंने भी ख्याल का उद्भव ध्रुवपद को मानते हुए कहते हैं ख्याल के अर्विभाव का श्रेय अमीर खुसरो, सुल्तान बाज बहादुर आदि को दिया जाता है किन्तु इसके प्रचार का श्रेय सदारंग-अदारंग को हीं देना पड़ेगा।

श्री के.जी. गिंडे सुमिति भुटारकर कैप्टन विलर्ड आदि बहुत हद तक कव्वाली से ही ख्याल का उद्गम मानते है। पंडित विष्णु नारायण भातखंडे ने सर्वथा नवीन अवधारणा का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि यह मानना उचित नहीं है कि किसी एक व्यक्ति ने ख्याल का अविष्कार करके उसका प्रचार किया। यह संभव है कि ख्याल की तरह का गाना समाज में प्रचलित तो हो परन्तु वह सामान्य न हो। पश्चातवर्ती समय में जब

सुल्तान हुसैन शर्की ने इस प्रकार के गाने को सुनकर पसंद किया तो उसने गायकों को प्रोत्साहिक किया। जिससे उसका प्रचार अधिक हो गया।[30]

अतः यह कहा जा सकता है कि ख्याल शैली अमीर खुसरों से पूर्व ही भारत में विद्यमान थी तथा अमीर खुसरो से पूर्व काल तक उसका प्रचार हो चुका था। अतः अमीर खुसरो को इसका अविष्कारक न मानकर प्रचारक मानना अधिक प्रासंगिक लगता है।

हालांकि श्री उमेश जोशी का मत भिन्न है उनका मानना है कि ‘‘ख्याल की रचना सर्वप्रथम अमीर खुसरो ने की परन्तु उस समय यह शैली किसी कारणवश अपेक्षित लोकप्रियता न प्राप्त कर सकी। उसके पश्चात् अन्य कई संगीतज्ञों ने इसको प्रचार-प्रसार में लाने का प्रयास किया परन्तु सफलता नहीं मिली। अब अठारहवीं शताब्दी में सदारंग खां जो मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी गायक थे, ने ख्याल रचनाएँ की जिसमें उन्होंने तत्कालीन बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले का नाम डाल दिया जिसके कारण रचनाएँ अधिक लोकप्रिय हो गई।[31]

श्री चैतन्य देसाई के अनुसार ‘ख्याल शैली’ के उद्गम का समय निर्धारण करना कठिन है परन्तु यह निश्चित है कि राजस्थान में गाये जाने वाले नाट्यगीत तथा बिहार में विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को ख्याल कहा जाता था। राजस्थान में आज भी नर्तक गायकों की एक ऐसी जाति है जो नृत्य करते हैं ओर ख्याल गाते हैं।[32]

उपर्युक्त विभिन्न विद्वानों के मतों का अध्ययन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ‘कल्पना’ , ‘ख्याल’, ‘विचार’आमतौर पर अभिव्यक्ति, सृजनशीलता एवं विचार शक्ति ये सभी संज्ञाएँ मानव दिमाग की उपज है और ख्याल गायकी का ये सार सर्वसम्मति से सिद्ध है। वर्तमान युग में ख्याल गायक के बिना रागों की कल्पना भी नहीं की जा सकी। ख्याल गायकी में राग को अपने विशेष रूप में पूर्ण स्वतंत्रता से विकसित होने का अवसर मिलता है।

दूसरे शब्दों में कहा जाए तो स्वर ताल पद इन तीनों अंगों से युक्त वह बंदिश ख्याल नाम से प्रचलन में आई जिसमें गायक को राग विस्तार में राग के नियमों के पालन करने के साथ-साथ अपनी प्रतिभा ओर कल्पना के बल पर उसमें कुछ नया आकर्षण जोड़कर उसे प्रभावशाली बनाने की स्वतंत्रता हो।

विभिन्न विद्वानों के मतों का अध्ययन करने पर ख्याल के अविष्कार एवं विकास संबंधी अनेक मत प्राप्त होते हैं जिनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ-

(क) ख्याल का जन्म प्राचीन गायन शैलियों का परिवर्तित स्वरूप

(ख) ख्याल का जन्म किसी व्यक्ति विशेष की कृति

(क) ख्याल का जन्म प्राचीन गायन शैलियों का परिवर्तित स्वरूप :

अधिकतर विद्वानों का मत है कि ख्याल गायन शैली प्राचीन गायन शैलियों का परिवर्तित स्वरूप है। आचार्य वृहस्पति, संगीत विद्वान भातखंडे जी इसी मत का समर्थन करते हैं।

(ख) ख्याल का जन्म किसी व्यक्ति विशेष की कृति :

ख्याल का जन्म किसी व्यक्ति विशेष से जुड़े मत मानने पर इसके अविष्कारक, प्रचारक या उदारक पर नजर डालने पर हम अनेक विद्वानों के मत को देखते हैं-

ख्याल एवं अमीर खुसरोः- कुछ संगीत विद्वानों ने अमीर खुसरों से ख्याल का संबंध जोड़ा है और कहा है जब अमीर खुसरो ने 13वीं शताब्दी में रूपाकालप्ति की ऐसी सुन्दर अलंकृत शैली का गायन सुना जो अलंकारों से सुसज्जित एवं परिपूर्ण थी तब उसने सृजनात्मक कल्पना के लिए उस संगीत को ख्याल कहा। प्रचार में यही शब्द लोकप्रिय होता गया और यह गायन शैली 'ख्याल' के नाम से प्रचारित-प्रसारित हुई।

ख्याल एवं सुल्तापन हुसैन शाह शर्कीः- इतिहासकारों ने सुल्तान हुसैनशाह शर्की को ख्याल का अविष्कारक कहा उनके अनुसार विलम्बित ख्याल की खोज सुल्तान हुसैन शर्की की कृति और ख्याल में द्रुत ख्याल का चलन कव्वाली से हुआ। हुसैन शर्की खुसरो पद्धति के प्रकांड पंडित एवं अनेक रागों के अविष्कारक थे।

ख्याल एवं सदारंग अदारंगः- अठारहवी शताब्दी का पूर्वाद्ध काल संगीत के विकास का स्वर्णकाल माना जाता है। ख्याल के प्रचार की दृष्टि से मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार के गायक सदारंग एवं अदारंग आधुनिक ख्याल शैली के प्रणेता एवं प्रचारक है। सदारंग-अदारंग ने इस शैली को नई दिशा दी एवं इसका खुब प्रचार-प्रसार किया। सदारंग एवं अदारंग उच्च कोटि के ध्रुरपदिया थे ध्रुवपद की अपेक्षा ख्याल शैली सरल एवं कठोर नियमों से युक्त थी इसमें गीत रचना श्रृंगार रस से ओत-प्रोत थे जिसे सदारंग ने खटके, मुर्कि इत्यादि से सजाया। इस तरह ख्याल शैली जनसाधारण में लोकप्रिय होती चली गई।

ख्याल गायकी में सरसता, सहजता, रंजकता, माधुर्य इन सभी तत्वों के सुन्दर संयोजन और अभिव्यक्ति की अगणित संभावनाएँ है। यही कारण है कि वर्तमान समय में भी लोकप्रियता गुणवता और शास्त्रीयता के आधार पर यह शैली आज भी खूब लोकप्रिय है।

3.6.3.1 ख्याल का स्वरूप

1. विलम्बित ख्याल अथवा बड़ा ख्याल
2. द्रुत ख्याल अथवा छोटा ख्याल

1. बिलंबित ख्यालः- ख्याल की वैसी गीत रचना जो विलम्बित लय में गाई जाए उसे विलम्बित ख्याल कहा जाता है। ख्याल के इस अंग के प्रचारक सुल्तान हुसैन शर्की को माना जाता है। अधिकतर विलम्बित ख्याल की गीत रचना में विलम्बित लय के तालों का प्रयोग किया जाता है। जैसे एकताल, झूमडा, तिलवाड़ा, आड़ा, चौताल, तीनताल इत्यादि।

गायन शैलीः- इस गीत रचना के दो भाग होते हैं- स्थायी एवं अंतरा।

प्रारंभ में गायक संक्षिप्त आलाप द्वारा राग के स्वरूप को स्थापित करके स्थायी को प्रारंभ कर देता है। आलाप करते समय गायक अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर आकार, इकार, बोल, आलाप आदि को लेकर सम पर आता है। राग के इस आलापचारी अंग में गायक द्वारा श्रोतावर्ग को राग में रसानुभूति, करवाने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। इसके प्रयोग से राग का भाव पक्ष साकार हो उठता है। तत्पश्चात बोलबाट में विभिन्न लयकारियों का प्रयोग सरगम तानों तथा बोलतानों के प्रयोग से विलम्बित लय के गायन का दूसरा पक्ष कला पक्ष तथा गले की तैयारी देखने को मिलती है। विलम्बित ख्याल की प्रवृति गंभीर होती है इसमें श्रृंगार रस, शांत रस एवं करूण रस की प्रधानता होती है।

2. द्रुत ख्याल अथवा छोटा ख्यालः- द्रुत ख्याल गायकी में बंदिश की बढत का क्रम वही है जो बड़ा ख्याल का है। बड़ा ख्याल के बाद छोटा ख्याल गाने का विधान है। बंदिश का स्थायी, अन्तरा गाने के बाद गायक द्वारा छोटे-छोटे बोल आलाप को प्रस्तुत राग में अपनी कला दक्षता एवं तैयारी को दिखाता है। इसके बाद सरगम, तान एवं बोलतान का प्रयोग गायक करते है। गायक प्रायः छोटे-छोटे आलाप लेकर राग में बढ़त को दिखाते है। सपाट तान, फिरत की तान व दानेदार तान, छूट की तान व अलंकारिक तान इस प्रकार अनेक तानों के प्रकारों का प्रयोग करने से कलापक्ष साकार हो उठता है।

इस तरह हम देखते हैं कि स्वरों व शब्दों के उचित तालमेल के बीच ख्याल में अनेक गायन शैलियों का मिश्रण दिखाई पड़ता है। जैसे- प्रबंध के छः अंग- स्वर, विरूद्ध, तनक, पद, पाट, ताल, ध्रुवपद, धमार की गंभीरता, ठुमरी की श्रृंगारिकता, टप्पे की तान तथा अनेक प्रकार के लोकगीतों में ली जाने वाली गलें कि विशेष हरकतें, कंठ की तैयारी तथा गमका खटका एवं मुर्की का प्रयोग।

ताल की विविधता एवं भी ख्याल गायकी का महत्वपूर्ण पक्ष है। विलम्बित एकताल, झूमड़ा, आड़ा, चौताल इत्यादि तालों का बड़ा ख्याल में प्रयोग एवं तीनताल, एकताल, झपताल, रूपक, द्रुत एकताल, द्रुत आड़ा चौताल का मध्य एवं द्रुत लय ख्याल गायन शैली में प्रयुक्त होता है।

ख्याल के गीतों के वर्ण्य विषय श्रृंगार रस के विविध पक्षों की प्रस्तुति, राजाओं की स्तुति, ऋतु वर्णन, सास ननद की नोंक झोंक, ईश्वर के उपासना आदि है। इसकी शब्द रचना में उतर भारतीय भाषाओं की ब्रज, हिंदी, उर्दू पंजाबी आदि की प्रधानता रहती है।

ख्याल के पद में वर्ण संख्या मात्रा संख्या या गणआदि का नियम नहीं होताहै। कभी-कभी विलंबित ख्याल में स्थायी खंड बहुत छोटा और अंतरा अपेक्षाकृत बड़ा होता है। लेकिन दोनों खंडों में अन्त्यानुप्रास रहता है। ऐसे ख्याल में पदों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ-

1. स्थायी- पतियाँ ले जा प्रणव पिया के देस
   अंतरा- गल बिच माला कानन बीच मुंदरा
   कर रही जोगन वारो बेस
2. स्थायी- बुला ला आली श्याम सुंदर बनमाली
   अंतरा- देखहूँ नैन भरी रसिया की सोहनी
   सुरत निराली मतवाली
3. स्थायी- फूली री बसंत बहारिया,
   प्यारे की छब देखी मन में।
   अंतरा- बेला चमेली, गेंदा, गुलाब
   जाइ जुही और बेलरियाँ बन में।[33]

ख्याल में प्रस्तुत होने वाले तालों के उदाहरणः-

एकताल

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
धीं	धीं	धागे	तिरकिट	तू	ना	क	ता	धागे	तिरकिट	धी	ना
x		0		2		0		3		4	

रूपक

1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**
ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना

झपताल

1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**	**10**
धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
X		2			0		3		

राग बसंत

झपताल

स्थायी

सब बन फूले आई री रितु बसन्त की

अंतरा

औलिया अंबिया सब मुराद मांगत

सदारंग भर पाई[34]

स्थायी

झपताल

म	ग	रे	सा	सा	सा	-	-	-	सा
स	ब	ब	-	न	फू	ऽ	ऽ	ऽ	ल
नि	सा	म	-	ग	म	-	पधपप	ग	ग
आ	ई	री	ऽ	ब	हा	ऽ	ऽऽऽ	ऽ	र
म	-	ध	-	नि	ध	धप	गम	ग	रेसा
रि	ऽ	तु	ऽ	ब	सं	ऽऽ	ऽऽ	त	कीऽ
0		3			x		2		

अंतरा

म	ध	सां	-	सां	सां	सां	-	सां	सां
औ	लि	या	ऽ	अं	बि	या	ऽ	स	व
सां	सा	-	-	सां	सां	-	नि	ध	नि
मु	रा	ऽ	ऽ	द	माँ	ऽ	ग	ऽ	त
म	ग	रे	सा	सा	प	प	प	ध	ग
स	दा	रं	ऽ	ग	भ	र	पा	ऽ	ई
x		3			x		2		

राग-बसंत तीन ताल

स्थायी

फगवा मैं दूंगी रे

एरी माई नंदलाल को बृज में जाय

अंतरा

मोरे मंदिरवा जब आवेंगे

कंचल थाल सजाऊँगी

फूल रसीले भर लूंगी।[35]

बसंत तीन ताल

														सां	नि
ध	प	म॒	ग	म	ध	नी	सां	रे	सां	-	नि	ध	प	सां	नि
वा	ऽ	में	ऽ	दूं	ऽ	गी	ऽ	रें	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	फ	ग
ध	प	मे॒	ग	मे॒	ध	नि	सां	रें	सां	-	-	सां	नि	ध	प
वा	ऽ	मैं	ऽ	दूं	ऽ	गी	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ए	री	मा	ई
म॒	ग	ग	म॒	ग	रे	सा	-	सा	म	ग	म	-	ध	सां	नि
नं	ऽ	द	ला	ऽ	ल	को	ऽ	बृ	ज	में	जा	ऽ	य	फ	ग
0				3				x				2			

अंतरा

म	-	ग	ग	म॒	म॒	ध	-	सां	सां	सां	-	सांनि	रें	सां	-
मो	ऽ	रे	मं	दि	र	वा	ऽ	ज	ब	आ	ऽ	वें	ऽ	गे	ऽ
नि	-	सां	गं	ग	रें	सां	सां	सां	-	नि	ध	प	-	म॒	ग
कं	ऽ	च	न	था	ऽ	ल	स	जा	ऽ	ऽ	ऽ	ऊ	ऽ	गी	ऽ
सा	-	म	म	ग	-	म॒	ध	सां	सां	नि	ध	म	ध	सां	नि
फू	ऽ	ल	रं	गी	ऽ	ले	ऽ	भ	र	लूं	ऽ	गी	ऽ	फ	ग
0				3				x				2			

राग बसंत त्रिताल (मध्य लय)

स्थायी

रितु बसन्त सखी आई सुहावन

अंतरा

पत बसन नर नारी पहने

सबके मन को अति ही आवन [36]

स्थायी

सां	नि	ध	प	म	ग	म	ग	म	ध	म	म
रि	तु	ब	स	ऽ	त	स	खी	आ	ऽ	ई	सु
								ग	रे	सा	सा
								हा	ऽ	व	न
0				3				2			

अंतरा

म	-	ध	ध	सां	सां	सां	सां	म	-	गं	म
प	ऽ	त	ब	स	न	न	र	ना	ऽ	री	ऽ
								ग	रें	सां	-
								प	ह	ने	ऽ
रे	नि	ध	प	मं	ग	मं	ग	मं	ध	म	-
स	ब	के	ऽ	म	न	को	ऽ	अ	ति	ही	ऽ
								ग	रे	सा	सा
								आ	ऽ	व	न
0				3				2			

राग बसंती केदार (बिलंबित)

स्थायी

अतर सुगंध गुलाब नवेलरिया चहूँ दिस फूल रहे

कलिया डालरिया

अंतरा

फुलबनकी डार डार भंवरा डरावत

आई बसंत बहार नवेलिया [37]

स्थायी

पधपपम	मम -प-ध	पसांसा	रेनिधमगमग	मगरेसा	रेगरेसा	पनिधधपप	निरेसा
जऽऽघ	गुलाऽऽ	ऽऽब	नवेऽऽलऽ	रिऽऽसा	चहूँऽऽ	अतऽरसु	ऽदिस
x		0		2		0	

निसारेसांनिध	धनिसांनिरेंगरेंसां	निधपममध	पधपमम-
फूलरहेऽऽ	कलिऽऽऽयाऽ	डाऽऽ लऽऽ	रिऽऽ याऽऽ
	3		4

अंतरा

					ममप-पधप	
					फलवऽनऽकी	
सां-सां	सां-सां	निनिसां-	रेंगरेंसांनिधप	म-ग-	निसा-	
डाऽर	डाऽर	भंवराऽ	डुऽराऽऽऽऽ	वऽतऽ	आईऽ	
x		0		2		

रेंगरेंसांसां	निसांनिधप	निनिसां	निधप	पधपमम-
बऽसंत	बहाऽऽर	नवेऽ	लरिऽ	ऽऽऽयाऽ
0		3		4

3.6.4 ठुमरी गायन शैली

ध्रुवपद, धमार, ख्याल आदि गायन शैली के समान ही ठुमरी भी प्रचलित गायन शैली है। ठुमरी गायन में शब्द, स्वर, लय और भाव एक सा रहता है। ख्याल गायकी स्वर प्रधान है, जबकि गजल एवं भजन शब्द गायन शैलियाँ हैं परन्तु ठुमरी में शब्द एवं स्वर का सुंदर समन्वय रहता है। ठुमरी गायन के लिए कलाकार की उच्च कल्पनाशक्ति के साथ-साथ स्वरोच्चारण और शब्दोच्चारण पर प्रभुत्व रहना चाहिए।

आचार्य वृहस्पति ने ठुमरी की व्याख्या करते हुए कहा है 'ठुमरी' शब्द 'ठुम' और 'री' से मिलकर बना है। ठुम ठुमकने का धोतक है और री अतरंग सखी से अपने अंदर की बात कहने का। ठुमरी का विषय नायिका के अंदर की असंख्य भाव-लहरियों का चित्रण है।[39]

चन्दशेखर पंत के मत के अनुसार 'ठुम' और 'री शब्दों के योग से निर्मित ठुमरी में या ठुमक शब्द नृत्य के पद संचालन और 'ठसक' भरी गर्वीली चाल को व्यक्त करता है। इसी के निकटतम शब्द 'ठुमका' का अर्थ है 'छोटे आकार का'। विभक्ति के रूप में 'री प्रायः की के अर्थ व्यवहृत होती है जो कि अधिकार और सम्बन्ध का धोतक है, किसन रूक्मिणी बोली हमरी, तुमरी इत्यादि।

अतः पुरी तरह व्युत्पतिगम्य अर्थ के अनुसार ठुमरी शब्द एक ऐसे लघु आकार के गीत की ओर ईशारा करता है जो नृत्य और उसके सुकुमार भावों का संबंध है।[40]

सुशीला मिश्रा के अनुसार- ''ठुमरी से ऐसे पदन्यास का बोध होता है जिसमें स्वाभिमान आत्मसम्मोहन और रूप रचना की सूक्ष्म भावात्मक अभिव्यक्ति सन्निहित होती है।[41]

सुप्रसिद्ध ठुमरी नायिका वृजवालादेवी के अनुसार ''ठुम और री दो शब्दों के योग से बना हुआ शब्द 'ठुमरी' है। जिसका अर्थ होता है ठुमुक ठुमुक कर रिझाना अर्थात राधा के ठुमक कर चलते हुए कृष्ण के मन को रिझाने की अभिव्यंजना ठुमरी है।[42]

मोहन नाडकर्णी के अनुसार-'ठुमक' शब्द से ठुमरी का निर्माण हुआ है। 'ठुमक' यानि ढ़ंगदार पदन्यास। 'ठुमरी' शब्द 'ठुमक' और रिझाना से बना है अर्थात् ठुमरी के साथ नृत्य भी संबंधित है।[43]

ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार- 'ठुमरी नृत्य संगीत का एक प्रकार है जिसका अभिनय एक अभिन्न अंग है।[44]

डॉ. सुशीला पोहनकर के अनुसार ''ठुमक शब्द से ठुमरी की उत्पति है। 'ठुमक' से तात्पर्य ठुमकना अर्थात् ठुमकते हुए चलना। गोस्वामी तुलसीदास के 'ठुमक' चलत रामचन्द्र बाजत पैजनियाँ' इस अत्यंत लोकप्रिय भजन में भी हमें इस शब्द का स्पष्ट संकेत मिलता है। री यह शब्द संबोधन के लिए प्रयुक्त संबोधनवाचक यह शब्द है। जनसाधारण की बोली में 'री', 'अरी' 'हे री', 'एरी' ये संबोधनात्मक शब्द बहुत उपयोग में लाये जाते हैं। अतः इस पूरे शब्द का अर्थ नृत्य के साथ गाया जानेवाला गीत ठुमरी है।[45]

उस्ताद वज्जन खां के अनुसार- 'ठुमरी शब्द से पद संचालन का बोध होता है अर्थात् ठुमरी के शब्दों के भाव को स्वर के माध्यम से नृत्यात्मक अभिव्यंजना होती है। ठुम शब्द ठुमकत चाल और री शब्द रीझावन की ओर इंगित करता है। अतः ठुमरी शब्द में नायिका के ठुमक कर चलते हुए नायक के मन को रिझाने की अभिव्यंजना है।[46]

इस तरह आचार्य वृहस्पति, गिरिजाशंकर चक्रवर्ती, श्रीमती वृजवाला देवी, डॉ. अरविन्द कुमार, मोहन नाडकर्णी, सुशीला मिश्रा, सरला भिंडे, डॉ. सुशीला मोहनकर आदि विद्वानों ने ठुमरी शब्द की व्युत्पति ठुमक शब्द से मानते हुए 'ठुमरी' शब्द के 'ठुम' और 'री' यह दो अंश और ठुम को 'ठुमक' का धोतक माना है। जो साधारण नायक-नायिका से लेकर राधा-कृष्ण के प्रेम वर्णन अथवा विरह वर्णन पर आधारित गायन शैली है। प्रत्येक कलाकार अपनी कल्पना, प्ररेणा तथा अनुभवों पर विविध बोलों का समावेश कर यह गायकी प्रस्तुत करता है।

मूलतः नृत्य से संबंध होने पर भी यह गीत कालांतर में नृत्य से पृथक होकर गीत की विशेष विधा के रूप में ठुमरी का स्वतंत्र विकास हुआ। गान की विशिष्ट विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो जाने के बाद ठुमरी को नृत्याभिनय के साथ गाया जाना आवश्यक कार्य नहीं रहा। अतएव 'ठुमरी' शब्द के अर्थ में नृत्य की संबद्धता भी धीरे-धीरे समाप्त प्रायः हो गई है और इसके शाब्दिक अर्थ में परिवर्तन आ गया। ठुमरी प्रारंभ से ही एक माधुर्य गुण सम्पन्न श्रृंगारिक गेय विधा रही है। इसलिए आगे चलकर 'ठुमरी' शबद का अर्थ श्रृंगारात्मक गेय विधा के रूप में प्रचलित हो गई। वर्तमान समय में 'ठुमरी' शबद का यही अर्थ आमलोगों में प्रचलित है।

ठुमरी गायकी की प्रकृति ध्रुवपद से पूर्ण रूपेण और ख्याल से बहुत अधिक अलग है। ध्रुपद के पूर्णतया पुरूष वाचक हैं। इसमें वीररस का अंतरभाव होता है। इसमें ईश्वर या देवताओं के अलौकिक गुणों प्रकृति तथा ऋतुओं के वैभव और राजाओं एवं उनके दरबारों की शान का

वर्णन किया जाता है। संगीत की गायन शैलियों में सुन्दरता को व्यक्त करने के लिए ठुमरी को ही सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। विशुद्ध रूप से शास्त्रीय है। यह अनुशासित एवं नियमों में आबद्ध है। चूंकि इसमें सज्जा का कोई स्थान नहीं दिया जाता है। इसलिए इसमें तानों और अन्य अलंकारों का प्रयोग नहीं किया जाता। ठुमरी एक गौरवयुक्त गान है और इसकी सुंदरता अलंकारों के बिना ही इसकी सादगी में ही झलकती है।

3.6.4.1 ठुमरी की शैलियाँ

किसी भी गायन प्रकार के बंदिश और गायन शैली दो महत्वपपूर्ण स्तंभ होते हैं। जहाँ स्वर ताल बद्ध रचना के बंदिश कहलाती है वहीं बंदिश के आधार पर किया जाने वाला प्रत्यक्ष गान गायन शैली कहलाता है। किसी भी गेय विधा को समझने के लिए उसकी प्रचलित गायन शैलियों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

ठुमरी गायकी को साधारणतः चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला भाग एक छोटा सा आलाप है जिसे 'पकड़' या 'छेड़' कहते है। दूसरे भाग में स्थायी की स्वर विस्तार किया जाता है। यह स्वर विस्तार शब्दों के आधार पर किया जाता है और स्वरों के विभिन्न संयोग से शब्दों में निहित भावनाओं तथा काव्यात्मक विचारों के अनेक शब्द चित्रों को प्रदर्शित करते हैं। शब्द चित्रों को पूर्णरूपेण स्पष्ट करने के लिए कम, खटका, मुर्कि, गिटकरी, मीड़ आदि दूसरे रागों का भी सहारा लिया जाता है।

तीसरे भाग में बहलावे की चाल होती है। इस भाग का मुख्य ध्येय भी दूसरे भाग के समान कविता में भावों की व्याख्या करना है। गायक अपनी साधना और कुशलताओं को स्वतंत्र ढंग से प्रदर्शित करता है तथा स्वर बोल जो तरकीब जहाँ चाहे दिखलाता है। फिर वह थोड़ा अन्तर का विस्तार करता है और इस भाग को समाप्त करता है।

चौथा भाग दुगुन होता है जिसमें गायक अन्तरे के समाप्त होते ही प्रारंभ हो जाता है। इस भाग में तबला वादक बराबर की लय बजाता है और गायक इस लय में स्वर के विभिन्न उतार-चढ़ाव के साथ शब्दों काव्य-भाव में निगमन होकर गायन जारी रखता है तथा तबलावादक भी यहां पर लग्गी का प्रयोग करता है। अन्त में तिहाई के साथ गायन की समाप्ति होती है।

बंदिशों के शब्दों पर ही ठुमरी का गायन निर्भर रहने के कारण इस गायकी का विकास 'बोल प्रधान' गायकी के रूप में हुई है। अतः ठुमरी गायकी की वर्तमान शैलियों के विकास में भी ठुमरी गायकी के बोलो और स्वरों के साथ उनके बोल विस्तार की प्रमुख भूमिका रही

है। ठुमरी की बंदिशों में निहित बोलों की गयात्मकता और भावभिव्यंजनात्मकता की प्रधानता के आधार पर कालांतर में ठुमरी के दो प्रमुख भेदों का निर्माण हुआ जिन्हें क्रमशः बोल बाँट की ठुमरी' एवं 'बोल बनाव की ठुमरी' कहा जाता है।[47]

3.6.4.2 बोलबाँट की ठुमरी

इस प्रकार की ठुमरियों में प्रायः बंदिशों की रचना का चमत्कर सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। बोलबांट की ठुमरी का प्रसार-क्षेत्र लखनऊ, फर्रूखाबाद, बरेली, रामपुर, मथुरा, दिल्ली, इत्यादि स्थान की ओर अधिक होने के कारण इसे 'पछारी ठुमरी' के नाम से भी जाना जाता है।

बोलबाँट की ठुमरी का कत्थक नृत्य के साथ संबंध होने के कारण इस ठुमरी में लय का चमत्कार भी रहता है। बंदिशों के शब्दों को लय में बांट कर चमत्कार पैदा किया जाता है इसलिए इसे लय बाँट की ठुमरी भी कहा जाता है।

बोल बाँट की ठुमरियों में पश्चिमी क्षेत्रों के लोकधुनों का भी प्रभाव है। कुछ ठुमरियाँ मध्यलय के ख्याल, कुछ तराने कुछ सितार के गत और कुछ नृत्य के अधिक निकट है। इतना ही नहीं ठुमरियों पर ध्रुवपद धमार की भांति दुगुन और आड़ लयकारियों का प्रयोग भी दृष्टिगोचर होता है।

बोल बाँट की ठुमरी पर राग संगीत प्रधानता अधिक मिलती है। कुछ गंभीर रागों को छोड़कर प्रायः सभी रागों में इसका गायन होता है। इस ठुमरी में मुख्यतः ब्रज भाषा का व्यवहार होता है। इन ठुमरियों का वर्ण्य विषय कृष्ण का श्रृंगारत्मकता, ब्रजलीलाओं तथा साधारण नर-नारी का प्रेमाभिव्यक्ति का भी सुखद वर्णन मिलता है। मध्यलय में गाई जानेवाली ठुमरियों में श्रृंगार रस के संयोग वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण मिलता है। द्रुत लय की गति अधिक चपल होने के कारण इस लय की ठुमरियों में संयोग श्रृंगार ही प्रधान रहता है। कुछ ठुमरियों में काव्यात्मक चमत्कार भी मिलता है। जैसे धनाक्षरी, ठुमरी अधरबंद ठुमरी, अनुप्रास की ठुमरी इत्यादि। धनारंग के निम्न रचना में अनुप्रास की योजना दृष्टिगत होती है-

सांवलिया आज धरि पायो री आजु खेले होरी
छवि छलकत छिन छिप छपाकर
छूटत छहर पिचकारी
छैल छविले छल नंदन ते लिन्हीं छीन छलोरी।[48]

बोल बाँट की ठुमरी में बंदिश की प्रधानता होने के कारण इस शैली बंदिश संगठित, कलात्मक और लयबद्ध होती है। लय प्रधान होने पर भी इन ठुमरी पर अनेक विविधताएँ लिये हुए होती है। जैसे ख्याल की शैली, तराने की शैली, सितारवादन की शैली, कत्थक नृत्य आदि का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। बोल बाँट की ठुमरियों में सितारवादन की गतकारी या तराने के प्रभाव के कारण स्वर युक्त बोलों के विविध प्रयोगों की प्रधानता रहती है।[49]

कोई गायक या गायिका इस शैली में ध्रुवपद के समान दुगुन, आड़, कुआड़ आदि की लयकारी भी करता है। बंदिश के मुखड़े के साथ छोटी-छोटी तिहाइयों का भी प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है। बंदिशों की स्पष्ट शब्दोंच्चारण सहित भावपूर्ण गायन करना ही शैली का विशेषता है। इस प्रकार की ठुमरियों में गाते समय थोड़ा बोल विस्तार और कुछ छोटी-छोटी बोलतानों का प्रयोग करने के अतिरिक्त अधिक कलात्मक अलंकरण का प्रयोग नहीं किया जाता है। बंदिश में लय ताल की गत्यात्मकता और शब्दों की भावाभिव्यंजना के लिए मध्यलय की सर्वाधिक उपर्युक्त रहता है।

3.6.4.3 बोलबनाव की ठुमरी

बोलबनाव की ठुमरी मुख्यतः गायकी प्रधान ठुमरी होती है, जिसमें बंदिशों के शब्दों में निहित भाव को स्वरों के माध्यम से अभिव्यंजित कर भावात्मक बनाया जाता है।

बोलबनाव की ठुमरी गायकी प्रायः लोकधुनो से प्रभावित है अतः इस गायकी में लोकधुनों के निकट रहनेवाले रागों का प्रयोग अधिक किया जाता है। भैरवी, सिंध, पीलू, काफी सिन्दूरा, सोहनी, जोगिया, देस, तिलककामोद, बिहाग, झिंझोटी, तिलंग, खमाज पहाड़ी, बिहाग, कलिंगरा, जंगला आदि रागों में बोल बनाव की ठुमरियों का गायन अधिक होता है।

बोलबनाव की ठुमरी के बंदिशों की भाषा ब्रज अवधी, भोजपुरी इत्यादि प्रमुख रहती है। कभी-कभी एक ठुमरी की बंदिशों के कई भाषाओं का मिश्रण भी देखने को मिलता है।

बोलबनाव की ठुमरी का लय बिलंबित रहता है। इनके बंदिशों में शब्दों का प्रयोग कम किया जाता है। इसके बंदिशों में प्रायः स्थायी और एक ही अंतरा का प्रयोग रहता है। बिलंबित लय में गाई जाने के कारण बोलबनाव की ठुमरी की बंदिशों में शब्दों को परिवर्तन करने की सुविधा रहती है।

बोलबनाव की ठुमरी की गायकी में स्थायी के बोलों का भावानुकूल स्वर सन्निवेशों सहित शब्दों के माध्यम से बढ़त लिया जाता है। प्रत्येक बढ़त के बाद 'स्थायी' का मुखड़ा दिखाया

जाता है। बाद में यही काम अंतरा के साथ किया जाता है। अंतरे की समाप्ति के बाद 'स्थायी के पहले पंक्ति को तीन ताल या कहरवा ताल के अनुसार निबद्ध करके मध्यलय में गायी जाती है। बीच-बीच में इसमें स्वर परिवर्तन करते हुए छोटी-छोटी बोलतानों का व्यवहार करते हुए भावात्मक एवं मनोरम बनाया जाता है। इस शैली में निम्न शैली का प्रचार-प्रसार है-

1. **पुरब अंगः-** बोल बनाव की ठुमरी का प्रचार विशेष रूप में उतर-भारत के पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार में होने के करण इसे पूरब अंग की ठुमरी कहा जाता है। इस ठुमरी पर इस क्षेत्र के लोक संगीत का विशेष प्रभाव रहता है। इस ठुमरी में शुद्ध रागों की अपेक्षा रागों को मिश्र करके गाया जाता है। इस ठुमरी का अलंकरण का मुर्की, खटका, गिटकरी, मीड़ आदि के प्रयोग से किया जाता है।

(क) लखनवी शैलीः- उत्तर प्रदेश के लखनऊ और उसके निकटस्थ क्षेत्रों में विशेष रूप से प्रचलन में होने के कारण इस शैली को लखनवी शैली कहा जाता है। इस ठुमरी की रचनाओं में ब्रजभाषा के साथ-साथ अवधी और उर्दू का प्रयोग देखने को मिलता है। इसमें बोलबनाव के कलापक्ष पर अधिक ध्यान दिया जाता है। भैरवी राग में निबद्ध वजिद अली शाह द्वारा रचित यह लखनवी शैलीः-

बाबुल मोरा नइहर छुटोही जाय।
चार कहार मिल डोलिया उठावे
अपना बेगाना छूटोही जाय।[50]

लखनऊ के नवाबी युग में होने के कारण इस शैली में नृत्य के भाव के साथ-साथ नाजो नखरा, बनाव श्रृंगार और नफासत की प्रधानता दिखाई पड़ती है। इस ठुमरी पर टप्पा का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है।

2. **बनारसी शैलीः-** बनारस और उसके निकटस्थ क्षेत्रों में विशेष रूप से प्रचलित होने के कारण इसे बनारसी ठुमरी कहा जाता है। इस ठुमरी की रचनाओं में ब्रजभाषा के साथ-साथ भोजपुरी, मगही आदि पूर्वी बोलियों का प्रयोग देखने को मिलता है।

राग पहाड़ी जत ताल

मोर सजनना भये परदेशी
अकेली मोहे छोड़ के न
वाली उमर में कर लाए गवनवा
उन बिन सूना लागे भवनवा
का से कहे दिनराती
अकेली मोहे छोड़े न।
निस दिन कागा उचरे अंगनवा
कब आयेंगे मोर सजनवा
भेज रही मैं पाती
अकेली मोहे छोड़ के ना[51]

इन ठुमरियों पर यहाँ के लोक संगीत का पूर्णतः प्रभाव है। यहाँ के प्रसिद्ध लोक विधा चैती, कजरी, पूर्वी, झूमर आदि के प्रभाव से ये ठुमरी ओत प्रोत है। इस ठुमरी में बोल बनाते समय बोलों के कहन पर लोक धुनों की सादगी और सरलता दृष्टिगत होती है।

इस शैली में कहन पर अधिक ध्यान दिया जाता है कहन से हीं दर्द, हूक, पुकार आदि के भाव दृष्टिगोचर होते है। इस गायकी में कभी-कभी बंदिश के विषय के अनुसार दोहा, सोरठ, सवैया कवित आादि को भी गायक बीच-बीच में प्रस्तुत करते है।

3. **गया की शैलीः-** यह ठुमरी बिहार में गया एवं उत्तर प्रदेश के बनारस में भी प्रचलित रही है। इस ठुमरी पर बिहार के लोक संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनमें शब्दों के भावों का प्रकट करने में रागों के स्वरावली की सहायता ली जाती है। इस ठुमरी की लय अतिविलम्बित रहती है। इस अंग में खटका मुर्की आदि अलंकरण का प्रयोग बहुत कम होता है। गया अंग के एक ठुमरी का उदाहरण नीचे दिया जा रहा हैः-

राग- काफी

काहे गुमान भरी मुरलिया मुरलिया

मुरलि के धुन सुन घरबार छोडी

प्रति करी बदनाम भई री[52]

पंजाबी अंगः- यह ठुमरी पुरब अंग की तुलना में पंजाबी लोकसंगीत के सौंदर्य को लिए हुए पंजाब अंग की शैली के रूप में विकसित हुई। इस शैली में टप्पा के तानों का प्रयोग किया जाता है। इस ठुमरी की लय मुख्यतः मध्यलय होती है।

राग-भिन्नषड्ज

याद पिया की आये

ये दुःख सहा न जाये हाय राम।

बाली उमरिया, सुनी रे सेजरिया

जोबन बीतों जाये हाय राम[53]

इस अंग आकर्षक बोल बनाव में निहित न होकर स्वर समूहों का वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग की ओर अधिक रहता है। यह शैली भी स्वर वैचित्र्य प्रधान शैली है।

किराना अंगः- यह बोलबनाव की ठुमरी का ही एक रूप है। इस अंग पर ख्याल गायकी के किराना घराना का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। इस गायकी में रागों की शुद्धता का अधिक ख्याल रखा जाता है।

राग-जोगिया

पिया के मिलन की आस

दिन-दिन जोबना नही जात

जब से गये मोरी

सुधई न लिन्हीं

कैसे जाऊँ मैं पिया के पास[54]

इस अंग की ठुमरी में विलंबित तथा मध्य विलंबित लय रहता है। कण, खटका, मुर्की आदि का प्रयोग स्वरों के भावनात्मक बनाने के लिए किया जाता है। इस शैली में लग्गी का प्रयोग तबला वादक नहीं करता। ख्याल के समान तिहाई के साथ गायन का समापन होता है।[55]

3.6.4.4 ठुमरी गायन शैली की संरचना

ठुमरी गायन का मुख्य उद्देश्य भाव का सृजन करना है। इस गायन शैली की शब्द रचना सरल एवं संक्षिप्त होती है। अधिकांश ठुमरी स्थायी और एक अंतरा का होता है। इस शैली की रचना में लयबद्धता, स्वरबद्धता, तालबद्धता का महत्वपूर्ण स्थान है। इस शैली में अधिकांश विलम्बित लय का व्यवहार किया जाता है। इस शैली में अपना एक विशेष चलन स्वर लगाने का तरीका, ताल का लगाव अलग ढंग से होता है। इस शैली में राग का चयन जरूरी है परन्तु अत्यंत गंभीर राग में इस शैली की रचना नहीं किया जा सकता। इस शैली में पीलू, भैरवी, खमाज, तिलंग, देस आदि राग ज्यादा प्रयोग में आते है।

ठुमरी की संरचना निम्न तालों में होती हैः-

जतताल (16 मात्रा)

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	ऽ	धि	ऽ	धा	धा	ति	ऽ	ता	ऽ	तिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ
x				2				0				3			

दीपचंदी

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14
धा	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	तिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ
x				2			0			3			

अद्धा ताल

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
धा	धिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	ता	धिं	ऽ	ऽ
x				2				0				3			

राग – काफी (तीन ताल)

स्थायी

नागर नट हठ मोर मुकुट वारो
करत ढिठाई बंसीबट यमुना में

अंतरा

उचट मुचट मोरी गहे अख्तर
तट पनघट बंसीबट जमुना
देखत हंसत सब लोग लुगइयाँ[55]

स्थायी

प	ध	निरे	सारें	नि	ध	म	प	ग^{म}	रे	सा	रे	प	-	-	मु
स	सी	रीऽ	मैंऽ	त	ट	प	नि	याँ	कै	ऽ	से	जा	ऽ	ऽ	ऊँ
प	-	प	म	प	धनि	ध	प	ग	म	पध	मप	ग	रे	सानि	सा
ना	ऽ	ग	र	न	टऽ	ह	ट	मो	ऽ	रऽ	मुऽ	कु	ट	वाऽ	रो
रे^{म}	म	प	ध	म	प	पनि	सारें	सांनि	सां	नि	धनि	धप	ध	पम	प
क	र	त	ढ़ि	ठा	ई	बंऽ	ऽऽ	सी	ऽ	बऽ	ट	यऽ	मु	नाऽ	में

अंतरा

नि	ध	मै	प	ग^{म}	रे	म	प	प	प	ध	पध	सां	नि	सां	सां
उ	च	ट	मु	च	ट	मो	री	ग	हे	क	रऽ	अ	ख	त	र
प	ध	नि	सा	नि	प	ग	म	प	ध	पम	प	ग^{म}	रे	सानि	सा
त	ट	प	न	ध	ट	बं	ऽ	सी	ऽ	बऽ	ट	ज	मु	नाऽ	में
सा	सा	रे	रे	ग	ग	म	प	प	-	प	म	पध	नि	ध	प
दे	ख	त	है	स	त	बृ	ज	लो	ऽ	ग	लु	गइ	ऽ	याँ	ऽ
2				0				3				x			

संदर्भ-सूचीः-

1. बाहरी, डॉ- हरदेव राजपाल हिन्दी शब्द कोश, पृ. 570
2. भारतीय संगीत में निबद्ध तथा अनिबद्ध गान डॉ. विजय चादरोकर पृ.सं. 2
3. पंत डॉ. शिप्रा. राग शास्त्र में पारंपरिक बंदिश की भूमिका पृ.सं. 2
4. संगीत पत्रिका जून अंक 2001, श्री शांताराम कशलाकर पृ.सं. 25
5. प्रसाद राजेश, बंदिश, लक्ष्मी प्रकाशक, पृ. 52
6. पंत डॉ- शिप्रा राग शास्त्र में पारंपरिक बंदिश की भूमिका, पृ. 23
7. अत्रे- डॉ- प्रभा स्वरंजनी- पृ- सं. 7,11,12
8. भातखंडे. स्मृति ग्रंथ, श्री पी.एन. चिंचोरे पृ. सं.11
9. पंत] डॉ- शिप्रा राग शास्त्र में पारंपरिक बंदिश की भूमिका, पृ. 24
10. पंडित प्रो. देवव्रत चौधरी के साक्षात्कार से प्राप्त
11. वही
12. Muktkar Prof. Sumati, Aspect of Indian Music page 198
13. प्रो. देवव्रत चौधरी के साक्षात्कार से प्राप्त
14. मेहता श्री रमन लाल, आगरा घराना: परम्परा गायकी और चीजें, पृ. 43
15. भटनागर मधुरलता, भारतीय संगीत का सौंदर्य विधान, पृ. 158
16. संगीत रत्नाकर प्रथम अध्याय, गीति प्रकरण श्लोक सं. 14
17. पंत डॉ. शिप्रा, रागशास्त्र में पारंपरिक बंदिशों की भूमिका अंकित पब्लिकेशन दिल्ली पृ. 54-56
18. चिंचारें श्री पी.एन. भातखंडे स्मृति ग्रंथ पृ. 11
19. चादरोकर डॉ. विजय, भारतीय संगीत में निबद्ध तथा अनिबद्ध गान पृ. 2
20. जैन डॉ. रेनु स्वर और राग पृ. 281
21. पंडित भावभट्ट, 'अनुप संगीत रत्नाकर, स्वराध्याय श्लोक 165-167, पृ. 95
22. भारतखंडे पं. विष्णु नारायण क्र. पु. मा. तीसरी भाग पृ. 6000-602
23. वही पृ. 53-54
24. सुविख्यात गायक पं. कामोद पाठक से प्राप्त
25. पंत डॉ. शिप्रा राग शास्त्र में पारंपरिक बंदिशों की भूमिका पृ. 69
26. गर्ग लक्ष्मीनारायण निबंध संगीत पृ. 65

27. भारतखंडे संगीत विष्णु नारायण क्र. पु.मा. अंक 2 पृ. 137-138
28. लक्ष्य संगीत ध्रुपद गायकी की समस्याएँ जू. 1958, पृ. 18
29. शोध आलेख, ख्याल शैली शोध मीमांसा पृ. 28
30. भातखंडे पं. विष्णु नारायण संगीत शास्त्र प्रथम भाग, पृ. 55
31. जोशी उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 356
32. वही, पृ. 359
33. चौधरी सुभद्रा, संगीत संचयन, पृ. 178-179
34. संगीत जनवरी 1957, पृ. 143
35. मिश्र शंकरलाल, नवीन ख्याल रचनावली, सं. 1998
36. शुक्ल टी.आर. नवनिर्मित एवं अप्रचलित राग मंजरी एवं शास्त्र प्रथम संस्करण 1986
37. पटवर्द्धन डॉ. सुधा, संगीत राग विज्ञान चतुर्थ भाग पृ. 80
38. संगीत प्राध्यापक डॉ. अरविन्द कुमार से प्राप्त
39. वृहस्पति आचार्य, संगीत चिंतामणि पृ. 103
40. पंत पं. चन्द्रशेखर लिटररि आस्पेक्ट ऑफ ठुमरी कला भारती सम्मेलन पत्रिका पृ. 40
41. मिश्रा सुशीला लखनऊ की संगीत परम्परा, पृ. 12
42. नाडकर्णी, मोहन ठुमरी एक मूल्य मापन संगीत कला बिहार मई 1991, पृ. 143
43. सिंह ठाकुर जयदेव, ठुमरी का विकास, संगीत कला बिहार, मई 1991, पृ. 99
44. मोहनकर, डॉ. सुशीला, ठुमरी गायन शैली में लोक संगीत का तत्व संगीत कला बिहार, मई 1991, पृ. 96
45. उस्ताद बज्जन खां से भेंट वार्ता के आधार पर
46. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर चतुर्थ प्रबंधाध्याय श्लोक सं. 15 और 18
47. व्यास भरत, ध्रुवपद समीक्षा, पृ. 96
48. राठौड़ डॉ. भारती, ठुमरी, पृ. 149
49. भातखंडे क्रमिक पुस्तक मालिक भाग-2, पृ. 404
50. डॉ. अरविन्द कुमार संगीत विभागाध्यक्ष पटना विश्वविद्यालय, पटना द्वारा प्राप्त
51. वही
52. उस्ताद बड़े गुलाम अली खां द्वारा गाया हुआ।
53. उस्ताद अब्दुल करीब खां द्वारा गाया हुआ।

54. सिन्धुबाला उत्तर भारतीय संगीत में स्वतंत्रतापूर्व एवं स्वातंत्रयोतर ठुमरी गायकी और शैलियाँ: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ. 155
55. देवागंन पंडित, तुलसीराम, संगीत संजीवनी भाग 1, पृ. 48-49
56. वही, पृ. 54